कम्पनी के काले कारनामे

अर्थात्

भारतीय व्यापार और उद्योग-धंधों को बरबादी



अनुवादक

बलदेव प्रसाद गुप्त बी० ए०



प्रकाशक

सामयिक पुस्तकमाला

दारागंज, इलाहाबाद

प्रथमवार] १९३९ [मूल्य १)

मुद्रक—

श्री रघुनाथ प्रसाद वर्मा

नागरी प्रेस, दारागंज,

प्रयाग।

विषय-प्रवेश

अँग्रेजी राज्य के पहले भारत उतना ही महान व्यवसायी देश था जितना कि खेतिहर।

"जब कि नील नदी के मैदान पर पिरामिडों की दृष्टि फैलती थी, अथवा जिस समय कि योरोपीय सभ्यता के जनक यूनान और इटली देश केवल ऊजड़ भूमि के किसानों का ही पोषण करते थे, उसके पहिले ही भारतवर्ष धन और वैभव का केन्द्र था। देश अत्यधिक निवासियों से भरा-पुरा था जिसमें उद्योग-धंधे फलते फूलते थे, किसानों को अपने परिश्रम के बदले प्रकृति प्रतिवर्ष अत्यधिक मनोहर उपज की भरमार करती रहती थी। पृथ्वी से उत्पन्न कच्चे माल को कुशल कारीगर अत्यधिक अनुपम सुन्दर और कोमल पदार्थों के रूप में परिवर्तित करते थे, राज़ और नक्काश इमारतों के बनाने में हाथ बटाते थे जिनका टिकाऊपन, कई अवस्थाओं में, हजारों बरस की तरक्की के बाद भी नीचा नहीं दिखाया जा सका है। भारतवर्ष की प्राचीन अवस्था अवश्य ही असाधारण गौरव की थी"—थार्नटन कृत 'प्राचीन भारत का वर्णन' (दी डिस्क्रिप्शन आफ ऐन्शंट इंडिया)

भारत लोहे और कपड़े के व्यवसाय के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध था। श्रीयुत जस्टिस रानाडे ने भारतीय अर्थशास्त्र (इंडियन एकानामिक्स) नामक पुस्तक में लिखा है :—

"भारत के लोहे के व्यवसाय से केवल स्थानीय आवश्यकतायें ही पूरी नहीं होती थीं बल्कि उससे बनी हुई चीजें विदेशों को भी भेजी जाती थीं। इससे बनी हुई चीज़ों की उत्तमता सारे संसार में प्रसिद्ध थी। दिल्ली के निकट का लौह-स्तम्भ, जो कम से कम डेढ़ हज़ार वर्ष पुराना है, लोहा गढ़ने की ऐसी कुशलता प्रकट करता है जो इसका भेद समझने का प्रयत्न करने वाले सभी व्यक्तियों के लिए विस्मय की वस्तु रहा है। श्रीयुत बाल (भारत के भौगोलिक पैमाइश के सरकारी महकमे के भूतपूर्व अधिकारी) स्वीकार करते हैं कि आज से कुछ वर्षों पूर्व भी संसार के बड़े से बड़े कारखानों में इस तरह का स्तम्भ तैयार हो सकना बिलकुल असम्भव होता। इस समय भी बहुत कम ऐसे कारखाने हैं जहाँ लोहे की इतनी भारी चीज़ तैयार की जा सकती है। आसाम में भारी से भारी तोपें तैयार होती थीं। भारतीय लोहा या इस्पात ऐसी चीज़ थी जिससे दमइश्क के हथियारों के फल बनते थे जिनकी सारे संसार में प्रसिद्धि थी;उन पुराने समयों में फारस के व्यापारियों को भारत में इतनी दूर आकर ये चीज़ें प्राप्त कर इन्हें एशिया के देशों में भेजने से लाभ होता था। भारतीय इस्पात की कैंची, चाकू आदि के लिए इंगलैंड में भी एक समय काफी खपत होती थी। इस्पात और गढ़े हुए लोहे को तैयार करने की विद्या कम से कम दो हज़ार वर्ष पहले अत्यधिक पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी।" (प्रथम संस्करण पृष्ठ १५९-१६०)

भारत के वस्त्र का व्यवसाय ऐसा था कि उससे पश्चिमी देशों के ईसाई राज्यों के स्त्री-पुरुष वस्त्राच्छादन प्राप्त करते थे।

यह एक ऐतिहासिक घटना है कि जब सन् १६८८ ई० की अंग्रेजों की क्रान्ति के बाद महारानी मेरी अपने पति के साथ इंगलैण्ड आई तो उसने भारत के रंगीन कैलिको (सादे सूती कपड़े) की अभिरुचि दिखलाई जिसका प्रचार बड़ी तेज़ी से सब वर्ग के लोगों में हो गया।* किन्तु उन दिनों के लोकोपकारी अंग्रेजों को यह बात पसन्द नहीं आई। उन्होंने भारतीय माल का बहिष्कार घोषित किया। लेकी लिखता है:—

"सत्रहवीं शताब्दी के अंत में सस्ते और सुंदर भारतीय कैलिको (सादे सूती कपड़े), मलमल और छींट के कपड़े बहुत अधिक मात्रा में इंगलैंड में मँगाये गये और लोगो ने उन्हें इतना पसंद किया कि रेशम और ऊन के व्यवसायी बहुत अधिक भयभीत हो गये। इस कारण सन् १७०० और १७२१ई० में पार्ल्यामेंट के ऐसे कानून बने जिनमें कुछ खास किस्मों को छोड़ कर छपे या रंगे हुए कैलिक (सादे सूती कपड़े) को पहनने वा किसी प्रकार इस्तेमाल करने का सर्वथा निषेध किया गया तथा ऐसी छपी वा रंगी चीज़ों के प्रयोग का भी सर्वथा निषेध हुआ जिसमें सूत मिला हुआ हो।"*

लेकी फिर लिखता है कि इंगलैंड में "किसी महिला द्वारा भारतीय कैलिको (सूती सादे कपड़े) के बने वस्त्र धारण करना जुर्म माना जाता था। सन् १७६६ ई० में गिल्ड हाल में एक महिला पर दो स

---

* लेकी कृत "१८वीं सदी में इंगलैंड का इतिहास" जिल्द दूसरी पृष्ठ १५८

* लेकी कृत "१८वीं सदी में इंगलैंड का इतिहास" ७वी जिल्द पृष्ठ २५५

पौंड (तीन हज़ार रुपया) इसलिए जुर्माना हुआ था कि यह बात साबित हुई थी कि उसका रूमाल फ्रासीसी छालटीन का था।"†

किन्तु उस समय भारत का भाग्य-सूत्र इंगलैंड के राजनीतिक अधिकार के आधीन नही था। जब उसे वह शक्ति प्राप्त हुई तो उसने भारतीय माल का केवल वहिष्कार ही नही किया बल्कि भारतीय व्यवसायो का ऐसे साधनों द्वारा गला घोटा जिनको कोई न्यायोचित और समुचित नहीं कह सकता। एक अँगरेज़ इतिहासज्ञ ने लिखा है :—

"भारत के सूती वस्त्र के व्यापार का इतिहास बेरोक व्यापार के उस सिद्धान्त के प्रत्येक युगो और अवस्थाओ में की अनुपयुक्तता का विलक्षण उदाहरण उपस्थित करता है जो देशी व्यावसायिक वस्तुओं को कुछ महँगी होने के कारण भारी करो से रक्षित करने के स्थान में किसी सस्ती चीज़ को देश में बेरोक आने देने का समर्थन करता है। यह भारत के साथ उस देश द्वारा किये गये अत्याचार का एक शोक-पूर्ण नमूना है जिसके आधीन वह हो गया था। गवाहियो में यह बात कही गयी थी कि इस समय तक (१८१३) भारत का सूती और रेशमी माल इंगलैंड के बाज़ार में इंगलैंड में तैयार हुए माल की कीमतों से पचास और साठ प्रतिशत कम कीमत पर लाभ के साथ बिक सकता था। इस कारण यह आवश्यक हुआ कि भारतीय मालों के मूल्य पर ७० और ८० प्रतिशत का कर लगा कर वा उनका आना बिल्कुल ही रोक कर विलायती माल की रक्षा की जाय। यदि ऐसा न हुआ होता, अत्याधिक कर और निषेधात्मक आज्ञाएँ ऐसी न

† पूर्वोक्त पुस्तक ७वी जिल्द पृष्ठ ३२०

प्रचारित होतीं तो पैसली और मैनचेस्टर की मिलें प्रारम्भ में ही बैठ गई होतीं और भाप के इञ्जिनों द्वारा फिर चालू नहीं की जा सकी होतीं। भारतीय व्यवसायों के ध्वंस करने से उनकी उत्पत्ति हुई। यदि भारत स्वतन्त्र रहता तो वह इसका उत्तर देता; विलायती माल पर रुकावट डालने के लिए अत्यधिक चुंगी लगाता और इस प्रकार अपने हरे-भरे व्यवसाय को विनष्ट होने से बचा लिये होता। आत्म-रक्षा के इस कार्य के करने को उसको आज्ञा नहीं दी गयी। उसको पनपाना वा मिटाना विदेशियों के हाथ में था। विलायती माल किसी तरह की चुंगी दिये बिना ही भारत पर लादा जाता था और विदेशी व्यवसायी, अपने उस प्रतिद्वन्दी को हराने और अन्त में विध्वंस कर देने के लिए राजनीतिक न्याय की शक्ति प्रयुक्त करता था जिसके साथ वह बराबरी के पद पर नहीं बैठ सकता था।" (होरेस हेमैन विल्सन कृत "ब्रिटिश भारत का इतिहास" जिल्द १ पृष्ठ ३८५।)

भारत कल्पनातीत धन-सम्पन्न कहा जाता था इसलिए वह 'सोने का भारत' नाम से प्रसिद्ध था। उसके उद्योग-धंधे और व्यवसाय भी समृद्ध थे। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में योरप के समुद्रयात्री राष्ट्रों का भारत के समुद्री मार्ग ढूँढ़ने के प्रयत्न का उद्देश्य यह था कि वे उन दिनों भारत में उत्पन्न होने वाली प्राकृतिक वस्तुएँ और तैयार होने वाले पदार्थों को अपने देश में लावें। भारत अपनी प्राकृतिक और तैयार की जाने वाली वस्तुओं की बिक्री के बदले सारे संसार से सोना और चाँदी सदा खींचता था। इन बातों का उल्लेख इस पुस्तक में अन्यत्र देखा जा सकता है।

भारत में अङ्गरेज़ों का बेरोक व्यापार

इंगलैण्ड के निवासी बनियों की जाति हैं। सारी दुनिया में बनिया स्वार्थी और लोभी मशहूर हैं। वे अपना ही लाभ समझते हैं और दूसरों के हित की परवाह नहीं करते। अँगरेज़ों ने ये गुण सन १८१३ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी का चार्टर (व्यापार करने का अधिकार-पत्र या पट्टा) आगे के लिए बढ़ाये जाने के समय पर बहुत अधिक अंश में दर्शाया था। पार्ल्यामेंट की दोनों सभाओं की 'नियुक्त समितियों' के सन्मुख अनगिनत गवाहों ने शपथ खा कर कहा था कि हिन्दुस्तान में विलायती तैय्यार माल की बिल्कुल जरूरत नहीं है और उस देश के लोगों को किसी तरह के विलायती माल की दरकार नहीं है ; फिर भी लोभी अँगरेजों ने अपनी जेब में रकम बटोरने के लिए योजनाएँ ईजाद कीं और तरकीबें सोचीं। हाँ, उन्होंने खुले तौर पर यह नहीं कहा कि भारत में विलायती तैय्यार माल की खपत के लिए भारतीय उद्योग-धन्धों को कुचल डालना चाहिए। किन्तु उन्होंने जिन मार्गों पर चलना निश्चित किया वे इसी लक्ष्य को पूर्ण करने वाले थे।

भारत में विलायती माल की बिक्री बढ़ाने के लिए उन्होंने मुक्त-द्वार या बेरोक व्यापार का पक्ष लिया, जिसका अर्थ यह था कि आयात अर्थात् इस देश में आने वाले और निर्यात अर्थात इस देश से बाहर जाने वाले व्यापारिक पदार्थों पर किसी प्रकार का कर या महसूल न लगाया जाय, आयात और निर्यात दोनों प्रकार के माल के लिए व्यापार का मार्ग खुला रहे। किन्तु मुक्तद्वार का यह व्यापार पारस्पं-रिक नहीं होने दिया गया था। विलायती माल तो हिन्दुस्तान के ऊपर बल-पूर्वक लादा जाता था किन्तु भारत का तैय्यार माल विला-यत में आयात-निर्यात-कर और महसूल बिला चुकाये भेजे जाने की आज्ञा नहीं थी। यदि मुक्तद्वार या बेरोक व्यापार पारस्परिक होता तो विलायती उद्योग-धन्धे खुले मुकाबिले में कुचल दिये गये होते। किन्तु विलायत की पार्ल्यामेंट की दोनों सभाओं द्वारा नियुक्त समिति (सेलेक्ट कमेटी) के सामने बुलाये गये गवाहों की यह राय नहीं थी कि मुक्तद्वार व्यापार द्वारा भारतीयों में विलायती माल की खपत बढ़ सकती है। हम यहाँ पर कुछ गवाहों की सम्मति संक्षेप में देते हैं। कमेटी के सामने आने वाला पहला गवाह वारेन हेस्टिंग्स था।

प्रश्न—"क्या आपकी राय है कि इस देश और ब्रिटिश भारत के बीच बेरोक व्यापार होने पर विलायती तैय्यार माल की खपत उस देश में बहुत अधिक बढ़ सकेगी?"

उत्तर—"मेरा ऐसा विश्वास नहीं है। मैं नहीं जानता कि यह कैसे हो सकता है? इसके द्वारा उस देश में विलायती माल और

अधिक ठेला जा सकता है, किन्तु यह उनको खरीदने के लिए लोगों की आवश्यकताएँ नहीं बढ़ा सकता।"

श्रीयुत विलियम कूपर ने ऐसे ही प्रश्न के उत्तर में कमेटी के सामने कहा था, "मैं निःसन्देह यह नहीं सोचता कि इस तरह की कोई बढ़ती की सम्भावना है।" सर जान मैलकम, लार्ड टेनमाउथ, टामस ग्राहमैं, सर टामस मुनरो, जान स्ट्रेसी, टामस सिडेनहम, चार्ल्स बुलर आदि प्रतिष्ठित गवाहों ने एक स्वर से यह बात बतलाई थी कि बेरोक व्यापार से भारत में विलायती माल की खपत नहीं बढ़ सकती। इन गवाहों या दूसरे व्यक्तियों की सम्मतियाँ उद्धृत करना अनावश्यक है। सबकी सम्मति से यह बात स्पष्ट थी कि विलायती माल को खपत भारतीयों में बढ़ाई नहीं जा सकती। फिर भी इगलैण्ड के लोग ईस्ट इंडिया कम्पनी को व्यापार के विशेषाधिकार से वंचित कर भारत के साथ मुक्तद्वार व्यापार खुलवाने पर तुले हुये थे।

किन्तु उन्होंने अपने पूज्य धर्म-संस्थापक ईसा के इस उपदेश को तनिक भी प्रयोग में न लाना चाहा 'दूसरों के साथ वही व्यवहार करो जो दूसरें द्वारा अपने साथ करवाना चाहते हो'। मुक्तद्वार या बेरोक व्यापार की जो सुविधा वे अपने लिए चाहते थे वही सुविधा भारत-वासियों को देने के लिए तैय्यार नहीं थे। इस नीति में पारस्परिकता नहीं रखी गई। भारत में तैय्यार हुआ कोई माल इङ्गलैण्ड में कर दिये बिना नहीं भेजा जा सकता था। इङ्गलैण्ड-निवासी जिन विशेष अधिकारों के लिए लड़ रहे थे वे ही यदि भारतीय रोज-गारियों को मिले होते तो विलायती उद्योग-धन्धों की क्या दशा

हुई होती। निःसन्देह विलायती उद्योग-धन्धे पल भर में ही बरबाद कर दिये गये होते। पार्ल्यामेंट की कमेटी के सन्मुख हुई गवाहियों से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है। १२ अप्रैल सन् १८१३ ई० को सेलेक्ट कमेटी के सामने दी हुई श्री विलियम डेवीज़ की गवाही देखिए। उनसे पूछा गया:—

"क्या आपकी राय है कि हिन्दुस्तान के तैय्यार माल के प्रोत्साहन के लिए बहुत अधिक बढ़ाई हुई पूँजी लगाई जाय और वे योरोप में लाये जाँय तो क्या वे इस देश के तैय्यार माल को बहुत अधिक धक्का नहीं पहुँचायेंगे ?"

उत्तर:—"मैं सोचता हूँ कि यदि भारत से निर्यात अर्थात बाहर भेजे जाने वाले मोटे कपड़े के चालान को बहुत अधिक किया जाय तो इस देश के तैय्यार माल को बहुत अधिक धक्का पहुँचेगा। इसका एक सबूत देता हूँ। मैंने अपने नाम मद्रास से कपड़ा मँगवाया जिसकी चुङ्गी या आयात-कर इंगलैण्ड में दिया गया और उसे इंगलैण्ड में बेचा गया। लंदन के एक व्यापारी से खरीद कर उसी चालान के कपड़ों में से कुछ मैं अपने घर में अब भी इस्तेमाल कर रहा हूँ; मैं मोटे सूती कपड़े की बात कर रहा हूँ।"

इंगलैण्ड में भारत के बने सूती कपड़े के थान बिना आयात-कर दिये नहीं मँगाये जा सकते थे और यह आयात-कर (अर्थात् दूसरे देश से देश में मँगाये माल पर दिया जाने वाला महसूल) बहुत अधिक होता था। पार्ल्यामेंट की कमेटी के सन्मुख उपस्थित होकर श्री राबर्ट ब्राउन ने शपथ खा कर निम्नाङ्कित गवाही दी थी :

प्रश्न—"क्या आप भारत के सूती कपड़े के थान का बहुत बड़ा व्यापार करते थे?"—उत्तर—"हाँ, मैं करता था।"

प्रश्न—"क्या आप जानते हैं कि कंपनी की बिक्री के स्थान पर बेचे जाने वाले थान पर कीमत के हिसाब से क्या आयात-कर लगता था?"

उत्तर—"वे तीन हिस्सों में बटे हुए हैं। पहली किस्म मलमल की है जिस पर माल आने पर दस फी सदी और लगभग साढ़े सत्ताइस फी सदी कर देश में खपत होने पर दिया जाता था। दूसरी किस्म कैलिको अर्थात् छपे या बिना छपे सादे सूती कपड़े की है जिस पर साढ़े तीन फी सदी देश में माल आने पर और साढ़े अरसठ फी सदी देश में खपत होने पर महसूल देना पड़ता है। तीसरी किस्म ऐसी है जिस पर देश में आने के लिए बिल्कुल रुकावट है। इस तरह के माल आने पर साढ़े तीन फी सदी चुङ्गी देनी पड़ती है। किन्तु इन्हें इस देश में इस्तेमाल करने की आज्ञा नहीं है।"

भारत से मँगाये गये सूती थान पर मूल्य के अनुसार इस लगती चुङ्गी को हटाने के लिए इंगलैण्ड के किसी निवासी ने प्रस्ताव नहीं किया, ईस्ट इंडिया कम्पनी में सम्मिलित व्यापारियों को छोड़ कर इंगलैण्ड के प्रायः सभी देशी व्यापारी भारत के साथ बेरोक व्यापार करने के लिए आवाज़ उठा रहे थे, किन्तु इगलैण्ड में भारतीय तैय्यार माल को बेरोक व्यापार के इसी सिद्धान्त पर मँगवाने का समर्थन करने की उदारता या हृदय की यथेष्ट विशालता किसी ने नहीं दिखलाई। यदि ऐसा हुआ होता तो अँग्रेज रोजगारी बिल्कुल

बरबाद हो गये होते। पार्ल्यामेंट की कमेटी के सन्मुख श्री राबर्ट ब्राउन ने निम्नाङ्कित गवाही दी थी:—

प्रश्न—"क्या आप अपने साधारण अनुभव से यह कह सकते हैं कि इंगलैण्ड में तैय्यार किये हुए सूती कपड़े भारत में तैय्यार सूती माल की पूर्णता तक पहुँच गये हैं?" उत्तर—"मैं समझता हूँ कि कई अवस्थाओं में वे उनसे बहुत अधिक बढ़ चढ़ कर हैं।"

प्रश्न—"क्या आपका कहने का मतलब है कि विलायत के थान भारत के बारीक थानों से बढ़ चढ़ कर होते हैं?" उत्तर—"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है; वास्तव में मेरा मतलब साधारण और मध्यम दर्जे की किस्म से है।"

प्रश्न—"मान लीजिए कि भारतीय थान की खपत इंगलैण्ड में काफी हद तक होने लगे तो क्या उनमें की बारीक किस्में विलायत में तैय्यार किसी तरह के कपड़े के मुकाबले, जो बाजार में उसके मुकाबले लाये जा सकें, अधिक चल सकेंगी?" उत्तर—"यदि आपका मतलब आयात-कर दिये बिना भारत के बारीक कपड़े के थानों के आने से है तो वे निश्चय ही अँगरेजी माल को बहुत अधिक धक्का पहुँचायेंगे; किन्तु यदि आयात-कर से छुट्टी मिले तो मेरी समझ में भारत के मोटे कपड़े ऐसे होंगे जिनसे बहुत ही अधिक धक्का पहुँचेगा। इस समय आयात-कर साढ़े अरसठ प्रतिशत के लगभग होने से इतना अधिक है कि इङ्गलैण्ड के बाज़ार में वह नहीं के बराबर बिकता है।"

प्रश्न—"मान लीजिए कि भारतीय कपड़े के थान, चुंगी की बचत

के लिए विलायत में बिकने के लिए, चोरी से आयें तो क्या आपके विचार में चोरी से मँगाये जाने के कारण उन पर मँगाने का अधिक खर्च बैठने पर भी वे इस देश के सूती कपड़े को धक्का पहुँचा सकेंगे ?"

उत्तर—"मेरा ख़्याल यह है कि वे बहुत अधिक धक्का पहुँचायेंगे; और उन पर लगने वाली चुङ्गी के मुक़ाबिले उनको छिपा कर मँगाने का खर्च बहुत कम होने से अत्यधिक बचत होगी।"

यह स्पष्ट है कि भारतीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से भारत में अँगरेजों के मुक्तद्वार व्यापार खोलने की नीति का समर्थन नहीं हो सकता था। भारत को अँगरेजी माल की आवश्यकता नहीं थी। एक अँगरेजी विद्वान् डा० जानसन की उक्ति है कि "देशभक्ति बदमाशों का अन्तिम आश्रय है"। उसी प्रकार लोकोपकार अँग्रेज शोषकों का अन्तिम बहाना है। आर्थिक विचार नाकामयाब होने पर अँग्रेजों ने भारत के साथ अँग्रेजों का बेरोक व्यापार स्थापित करने की आवश्यकता सिद्ध करने के लिए लोकोपकार के बहाने से काम लिया। पार्ल्यामेंट की सेलेक्ट कमेटी ने यह भाव दिखलाया कि मुक्तद्वार व्यापार एक लोकोपकार का कार्य था, जिससे संसार के दूसरे देशों के सन्मुख भारत के निवासी ऊँचे उठें और सभ्य बनें! इस लिए सर टामस मुनरो से इस बात पर शपथ पूर्वक गवाही ली गई :

प्रश्न—"क्या आपने कभी इस पर विचार किया है कि पाश्चात्य जगत पर व्यापार का क्या प्रभाव पड़ा है, इसने निरंकुश शासन को ढीला या निर्मूल करने में क्या भाग लिया है योरप की प्रचलित रहन

सहन के परिवर्तन करने और योरप के समाज की अवस्था को अधिक उन्नत और जाग्रत करने में साधारण रूप से क्या सहायता की है?"

उत्तर—"मैने देखा है और विचार किया है कि व्यापार का प्रभाव योरप की अधिकाश जातियों में जाग्रत करने में बहुत अधिक पड़ा है।"

प्रश्न—"यदि इन्ही निमित्तों को भारत में खुल कर अपना प्रभाव दिखाने का अवसर दिया जाय और विरोध के स्थान पर सरकार द्वारा इनको बुद्धिमानी से उचित सहायता दी जाय तो आप की राय में भारतीयों की रहन-सहन और रूढ़ियों पर धीरे धीरे क्या प्रभाव पड़ेगा?"

उत्तर—" यदि भारतीयों की रहन-सहन और रीति-रिवाजों को बदलना है तो मैं सोचता हूँ कि सम्भवतः वे व्यापार द्वारा बदलेंगे; किन्तु उन पर व्यापार का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा नहीं जान पड़ता।"

इन गवाहो की जिरह करने का अवसर मिलने पर कोई भारत का वकील क्या प्रश्न करता, यह हम सोच सकते हैं। वह पूछता कि योरप पर व्यापार का जो प्रभाव सभ्यता की वृद्धि करने वाला हुआ वह क्या योरप के विदेशियों द्वारा शोषण किये जाने, नोचे-खसोटे जाने से हुआ है अथवा क्या इसके विरुद्ध योरप-निवासी माल तैयार करने वाले और बेचने वाले तथा साथ ही साथ खरीदार भी नहीं थे? और क्या भारतीयों को भी माल तैयार करने वाला और बिक्रेता बनाने के साथ साथ ही खरीदार बनाने की तजवीज की गई? किन्तु भारत-निवासियों में व्यापारिक उद्योग की भावना जाग्रत करने की कोई तजवीज नही की गई। इसके विरुद्ध मुक्तद्वार व्यापार भारतीयों के व्यापारिक उद्योग

को कुचलने के लिए ही प्रारम्भ हुआ था। पार्लीयामेंट की कमेटी के सम्मुख सर टामस मुनरो ने नीचे लिखी गवाही दी थी :

प्रश्न—"क्या भारत निवासियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति और इच्छा ऐसी नहीं है कि यदि लाभ और सुविधा के मार्ग उनके लिए खुले हुए हों तो वह उन्हें व्यापार के साथ ही साथ अन्य उद्योगों में भी अधिक उत्साह और जोश के साथ लगने के लिए बढ़ावे ?"

उत्तर—"भारत के निवासी उसी प्रकार वणिकों की जाति हैं जिस प्रकार हम लोग हैं। वे दुकान को कभी ध्यान से नहीं हटाते। वे अपने धार्मिक और राजनैतिक क्षेत्रों में भी इसका प्रवेश कराते हैं; उनके सभी तीर्थ और पर्व के स्थान हर तरह की वस्तुएँ बेचने के लिए मेले या बाज़ार होते हैं, धर्म और व्यापार भारत में सम-मार्गी कलाएँ हैं। इनका चोली-दामन का साथ है। किसी भी बड़े जन-समारोह में इन दोनों में से कोई एक दूसरे के बिना नहीं रह सकता। भारतीयों की इसी व्यापारिक प्रवृत्ति से मुझे यह सोचना पड़ता है कि किसी योरप के व्यापारी के लिए भारत के भीतरी भाग में अधिक समय तक ठहर सकना बिल्कुल असम्भव है और वे सब कुछ ही समय आगे या पीछे समुद्र-तट की ओर निश्चय ही भगा दिये जायँगे ; योरप का कोई व्यापारी एक महीने में जो खाता पीता है वह किसी हिन्दू के लिए बारह मास का बड़े मज़े का व्यापारिक लाभ हो सकता है, इस कारण वे बराबरी की शर्तों पर नहीं मिलते, यह मामला दो व्यक्तियों की तरह है जो एक ही बाज़ार में खरीद कर रहे हों लेकिन एक को चुङ्गी की गहरी रकम चुकानी पड़ती हो

और दूसरे को कुछ न देना पड़ता हो। योरोपीय व्यापारी को हिन्दू के मुकाबले अपनी रहन-सहन के लिए जो अधिक खर्च करना पड़ता है वह उसके लिए अतिरिक्त चुंगी की भाँति है। इसलिए यह असम्भव है कि वह ऐसी असमान अवस्था में अधिक समय तक मुकाबला कर सके, वह कुछ समय तक बड़ी पूँजी से कोई नया माल तैय्यार कर सकता है या किसी पुराने में सुधार कर सकता है। जैसे नील या चीनी; इस प्रयत्न की सफलता को देखने तक हिन्दू प्रतीक्षा करता रहेगा; यदि यह सफल और स्थायी होता मालूम पड़ता है तो वह उसमें लग जायगा और योरोपीय को उस क्षेत्र से भागना पड़ेगा। मैं सोचता हूँ कि इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि यह कारण समय पर चलता रहेगा जिससे योरोपीयों को मजवूर हो कर समुद्र तट तक भागना पड़ता रहेगा और इसमें मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं है कि आज के बाद जब हिन्दू व्यापारी इंगलैण्ड के व्यापारियों से सीधे पत्र-व्यवहार करने लगेगा हैं तो समुद्र के किनारे पर बसे हुए बहुत से गुमाश्ते ऊपर के कारणों और हिन्दुओं की प्रवीणता तथा अत्यधिक अल्प व्यय के कारण भारत से बिदा होने के लिए विवश होंगे।"

२—मार्ग और आयात-निर्यात कर

इंगलैण्ड के निवासी नैपोलियन के कारण बड़ी कठिनाई में पड़ गये थे जिसने योरोपीय महाद्वीप के बन्दरगाहों का द्वार अंग्रेजों के लिए बन्द कर अंग्रेजों के व्यापार और उद्योग-धन्धे को बिल्कुल नष्ट नहीं तो कमज़ोर कर देने का प्रयत्न जरूर किया था। अंग्रेज अपने माल की खपत के लिये बाज़ार तैय्यार करने की चिन्ता में थे। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर (व्यापार का अधिकार-पत्र या पट्टा) को १८१३ ई० में आगे के लिए बढ़ाने के अवसर पर कंपनी के ऊपर ऐसी शर्तें लादने की भरपूर कोशिश की जो अंग्रेजों को बहुत अधिक लाभ पहुँचाने वाली थीं। उन्होंने लोकोपकार के ओट में अपने पूर्ण उद्देश्यों को ढक रक्खा। किन्तु १८१३ के अधिकार-पत्र बढ़ने के कुछ बर्ष बाद ही वाटरलू का प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें नैपोलियन बन्दी हो कर निर्वासित हुआ। यह इंगलैण्ड के लिए बड़े महत्व की बात थी। अब अंग्रेजी उद्योग-धन्धों के लोप हो जाने का भय नहीं रह गया था। योरप महाद्वीप के बन्दरगाहों से अंग्रेजी माल जाने की रुकावट हट जाने से इंगलैण्ड के व्यापार और उद्योग-धन्धों का बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। मारक्विस आफ बेलेज़ली ने फ्रांस के साथ गुटबन्दी के केन्द्र मिटाने के बहाने भारत के देशी राजाओं के विरुद्ध युद्ध किया था। यह बात मान ली गई थी कि फ्रांसीसी भारतीय राजाओं के साथ गुटबन्दी कर रहे थे और आत्म-रक्षा के लिए वेलेज़ली ने देशी राज्यों का लोप

करते जाना जरूरी समझा था। ऐसी कार्रवाई ठीक या उचित थी या नहीं और भारतीय राजाओ के विरुद्ध युद्ध करने से वेलेज़ली १७९३ ई० के चार्टर ऐक्ट (अधिकार - पत्र के कानून) के इस भाग की पूर्ति कर रहा था कि नहीं जिसमें घोषित था कि "भारत में राज्य-विस्तार और विजय की योजनायें अनुसरण करना अंग्रेज जाति की इच्छा, मर्यादा और नीति के विरुद्ध कारवाइयां हैं।" ऐसे प्रश्न थे जिन पर विचार करने की आवश्यकता वेलेज़ली ने कभी नहीं समझी।

किन्तु मार्क्विस वेलेज़ली के युद्ध छेड़ने के पक्ष में समर्थन के लिए जो भी बातें कही जायँ, मारक्विस आफ हेस्टिंग्स के युद्धों के पक्ष में कुछ भी कहने की गुञ्जाइश नहीं। उस समय भारतीय देशी राजाओं से फ्रांसीसियो के गुटबन्दी करने की कल्पना का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। अँग्रेज इतिहासकार तो नहीं बतलाते किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के १८१३ ई० के चार्टर मिलने की शर्तें इसमें सन्देह करने की गुञ्जाइश नहीं बतलातीं कि भारत के देशी राजाओं को हड़प लेने और उनके विरुद्ध युद्ध करने के लिए अँग्रेजो को केवल दो ही बातों का ध्यान था अर्थात् पहला अँग्रेजी माल की खपत के लिए बाज़ार पैदा करने के लिए अँग्रेजों के आधीन में राज्य-क्षेत्र विस्तृत करना, दूसरा कम्पनी के अधिकार-क्षेत्र में पर्वतीय स्थानों को लाना जिससे अँग्रेजो की बस्ती और उपनिवेश स्थापित करने के लिए उपयुक्त स्थान मिल सकें जो भारत में अंग्रेजो की बेरोक बाढ़ होने में आवश्यक था।

सन् १८१३ के अधिकार-पत्र के पुनः प्राप्त होने से भारतीय उद्योग-धन्धों के विनाश और भारतीयों के ऊपर दुख और दरिद्रता फट पड़ने

का मार्ग खुल गया था। मुक्तद्वार व्यापार के सिद्धान्त से, जिस पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी को १८१३ ई० का चार्टर प्राप्त हुआ था, बंगाल से सूती माल के आयात (दूसरे देश से आने वाला माल) और निर्यात (देश से विदेशों को जाने वाला माल) का व्यापार कितना अधिक प्रभावित हुआ था वह सर चार्ल्स ट्रेवीलियन नामक अंग्रेज द्वारा सन् १८३४ ई० में प्रकाशित निम्नलिखित ब्यौरे से प्रकट है :—

भारतीय सूती थान और धागे के निर्यात और योरोपीय सूती थान तथा धागे के आयात का ब्यौरा

वर्ष	सूती माल निर्यात किया हुआ	सूतीमाल आयात किया हुआ	सूती धागा आयात किया हुआ
	रुपया	रुपया	रुपया
१८१३-१८१४	५२,९१,४५८	९२,०७०	
१८१६-१८१७	१,६५,९४,३८०	३,१७,६०२	
१८२०-१८२१	८५,४०,७६३	२५,५९,६४२	
			आयात करने का प्रथम वर्ष
१८२४-१८२५	६०,१७,५५९	५२,९६,८१६	१,२३,१४५
१८२७-१८२८	२८,७६,३१३	५२,५२,७९३	१९,११,२०५
१८२८-१८२९	२२,२३,१६३	७९,९६,३८३	३१,२२,६४०

वर्ष	रुपया	रुपया	रुपया
१८२९-१८३०	१३,२६,४२३	५२,१६,२२६	५५,५५,३२१
१८३०-१८३१	८,५७,२८०	६०,१२,७२९	३१,१२,१३८
१८३१-१८३२	८,४९,८८७	४५,६४,०४७	४२,८५,५१७

सर चार्ल्स ट्रेवीलियन ने ठीक ही कहा था "बङ्गाल के थानों की खपत का स्थान अन्य देशों में लगभग एक करोड़ रुपये सालाना और अपने देश में (सूती धागा को लेकर) लगभग ८० लाख रुपये सालाना अर्थात कुल एक करोड़ अस्सी लाख रुपये तक दूसरों ने ले लिया है। जो कुछ थोड़े बहुत थान अब भी विदेशों को भेजे जाते हैं वे अधिकांश अँग्रेजी धागे से बनते हैं।"

बङ्गाल के जुलाहों के साथ सहानुभूति दिखाते हुए, जिनका रोजगार मिट चुका था, सर चार्ल्स ट्रेवीलियन ने टिप्पणी की थी:—

"उन सब लोगों का क्या होना है, जो इस बड़ी सालाना रकम (एक लाख अस्सी हज़ार रुपया) उपार्जित करने के काम में लगे हुए थे, जब तक कि हम उनको दूसरे पेशों में घुसने देने कीसुविधा देने के लिए उन उद्योग-धन्धों को स्वतन्त्रता न दें जिसमें भारत को वास्तव में कुशलता प्राप्त है ?"

किन्तु भारत की ईसाई सरकार ने उन लाखों व्यक्तियों को भूखों मरने से बचाने के, लिए, जिनकी रोजी छीनी जा चुकी थी, ज़रा सा अपना हाथ भी नहीं हिलाया। ऐसा करना अंग्रेजों के लाभ की बात नहीं थी बल्कि वे यह देख कर प्रसन्न थे और अपने को धन्य समझते

थे कि भारत में अंग्रेजी माल का आयात प्रति वर्ष बढ़ रहा था जिससे वे यह नतीजा दिखलाते थे कि भारत उन्नत हो रहा है।

किन्तु, जबकि भारत के बाज़ार अँग्रेजी माल से पाटे जा रहे थे क्योंकि वे मुक्तद्वार व्यापार के सिद्धान्त पर देश में आने दिया जाता था, उस समय भारतीय रोजगारियों की क्या हालत थी! चुङ्गी दिए बिना उनको इङ्गलैण्ड में नहीं जाने दिया जाता था। जो अंग्रेज राजहंस के लिए उपयुक्त समझा जाता था उसकी भारतीय बगुले के लिए कोई आवश्यकता नहीं मानी जाती थी। भारत में तैय्यार माल के इंगलैण्ड में जाने पर उस पर जो गहरी चुङ्गी लगाई जाती थी उसका व्यौरा आगे दिया जाता है। ये आंकड़े सरकारी कागजात से लिए गये हैं। हम इङ्गलैण्ड में भारतीय माल के आयात-कर की रकमें सिर्फ१८१३ की दे रहे हैं। विस्तार-भय से हम दूसरे वर्षों के आंकड़े यहां पर नहीं दे सके। वे अन्यत्र देखे जा सकते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि इनमें से कुछ क़िस्मो के माल की चुङ्गी बाद में उस समय कम की गई जब उनको तैय्यार करने का व्यवसाय कुचल कर भारत से मिटाया जा चुका।

इंगलैंड में सन् १८१३ ई० में भारत से मँगायी जाने वाली सभी वस्तुओं पर लगने वाली चुंगी की दर

	पौंड	शि०	पे०
अरारोट मूल्य के हिसाब से प्रतिशत—	८१	२	११
मूल्य पर प्रतिशत और अधिक	३	३	४
बेंत की छड़ी मढ़ी हुई, रंगीन या अन्य प्रकार की			
अलंकृत मूल्य पर प्रतिशत	८१	२	११
मूल्य पर और अधिक प्रतिशत	३	३	४
चीनी मिट्टी की वस्तुएँ मूल्य पर प्रतिशत	१२९	१६	८
मूल्य पर और अधिक प्रतिशत	३	३	४
चीनी मिट्टी के बर्तन रंगीन और सादे	१२९	१६	८
मूल्य पर और अधिक प्रतिशत	३	३	४
नारियल के रेशे की रस्सी मूल्य पर प्रतिशत	८१	२	११
मूल्य पर और अधिक प्रतिशत	३	३	४
" " पुरानी और सिर्फ चटाई बुनने लायक	८१	२	११
मूल्य पर और अधिक प्रतिशत	३	३	४
सूती तैयार माल जैसे मलमल सादा, लंकलाट फूल-दार या बखिया किया हुआ, मलमल या सफेद कैलिको (सादे सूती कपड़े) प्रत्येक १०० पौंड मूल्य पर	३२	६	२
और अधिक प्रतिशत मूल्य पर	११	१७	६
कैलिको (सादे सूती कपड़े) सादे सफेद, डोरिया			

	पौं०	शि०	पे०
सादी सफेद प्रत्येक १०० पौंड मूल्य पर	८१	२	११
और अधिक प्रतिशत मूल्य पर	३	१९	२
इंगलैंड में पहनने या प्रयोग करने के लिए सर्वथा निषिद्ध माल (जिस पर से निषेध-आज्ञा सन् १८२६ ई० में उठाई गई) सन १८२६ की चुंगी की दर	१०	०	०
उपर्युक्त को सिर्फ गोदाम में रखने की चुंगी	३	१६	२
पूर्णतया या आंशिक रूप से बनी सूती वस्तुएँ जिन पर कोई चुंगी नहीं लगी प्रत्येक १०० पौंड मूल्य पर	३२	९	२
बाल या बकरे का ऊन, उससे तैयार माल, अथवा दूसरी वस्तुएँ जिन पर चुंगी नहीं लगी। मूल्य पर प्रतिशत	८१	२	११
मूल्य पर प्रतिशत और अधिक	३	३	४
भैंसा, साँड, गाय या बैल के सींग प्रतिशत	०	५	६
मूल्य पर प्रतिशत और अधिक	३	३	४
लाख का सामान मूल्य पर प्रतिशत	८१	२	११
मूल्य पर और अधिक प्रतिशत	३	३	४
चटाइयों और चटाई के सामान मूल्य पर प्रतिशत	८१	२	११
मूल्य पर और अधिक प्रतिशत	३	३	४
सौंफ का अर्क मूल्य पर प्रतिशत	८१	२	११
मूल्य पर प्रतिशत और अधिक	३	३	४
नारियल का तेल मूल्य पर प्रतिशत	८१	२	११

	पौं०	शि०	पें०
मूल्य पर और अधिक प्रतिशत	३	३	४
आबकारी चुंगी प्रति पौंड वज़न पर	०	२	०
साबुन कड़ा मूल्य पर प्रतिशत	८१	२	११
मूल्य पर और अधिक प्रतिशत	३	३	४
स्पिरिट जैसे अर्क प्रति गैलन	०	१	११$\frac{३}{४}$
१८२५ ई० तक आबकारी चुंगी	०	१९	१
चीनी प्रति हंडरवेट	१	१३	०
मूल्य पर प्रतिशत और अधिक	१	०	०
चाय प्रतिशत मूल्य पर	६	०	०
आबकारी	९०	०	०
दो शिलिंग या दो शिलिंग के नीचे प्रति पौंड वज़न पर बिकी सभी चाय पर १८१९ में लगी चुंगी	९६	०	०
दो शिलिंग से अधिक प्रति पौंड पर बिकी चाय पर १८१९ में लगी चुंगी	१००	०	०
कछुवे का खोपरा मोटा प्रति पौंड वज़न पर	०	३	११$\frac{१}{२}$
उससे तैयार माल मूल्य पर प्रतिशत	८१	२	११
और अधिक प्रतिशत मूल्य पर	३	३	४
कपास प्रति १०० पौंड वजन पर	०	१६	११
माल बर्तन और व्यापारिक वस्तुएँ जो पूर्णतयाः या आंशिक रूप से तैयार की हुई हों जो चुंगी लगने वाली वस्तुओं के दूसरे प्रकार में नहीं आतीं और			

	पौं०	शि०	पे०
जिनके इंगलैंड के आयात का निषेध नहीं है मूल्य प्रतिशत	८१	२	११
सामान माल बर्तन और व्यापारिक वस्तुएँ जो आंशिक रूप से या पूर्णतयः तैयार की हुई न हों जो चुंगी लगने वाली वस्तुओं के किसी दूसरे प्रकार में नहीं आती और जिनके इंगलैंड में मँगाये जाने का निषेध नहीं है। प्रत्येक १०० पौंड मूल्य पर	३	१३	४
मूल्य पर प्रतिशत और अधिक	३	३	४

नीचे लिखी वस्तुएँ इंगलैंड में मंगाये जाने के लिए सन् १८२६ ई० तक सर्वथा निषिद्धि थीं। इन पर से रोक हटाई जाने पर सन् १८२६ ई० में प्रतिशत ३० पौंड चुंगी लगाई गई थी।

रेशम का तैयार माल जैसे केश-बन्धन और सब तरह के रूमाल हल्का बारीक चमकीला रेशम सादा या रंगा हुआ, कैन्टन या चीनी पतला काला रेशम, रेशम का फूल काढ़ी हुई वस्तुएँ, रेशम अथवा रेशम के साथ दूसरी वस्तुओं के मेल से बना माल।

बंगाल के कुछ निवासियों ने जो बंगाल के कपड़े, सूती और रेशमी कपड़े के थान तैयार कराने वाले और व्यापारी थे। पहली सितम्बर सन् १८३१ ई० को कलकत्ते से एक दरख्वास्त इंगलैंड सरकार के अधिकारियों के पास भेजी। इस दरख्वास्त पर बहुत ही अधिक प्रतिष्ठित ११७ भारतीयों के दस्तखत थे। उन्होंने लिखा था:—

"यह कि पिछले कुछ वर्षों से आवेदक अपने व्यापार को इंगलैंड

के बने कपड़े के बंगाल में आने से बैठना हुआ देखते हैं। बिलायती कपड़ा देशी व्यवसायियों की प्रति वर्ष बहुत हानि करता जा रहा है।

"यह कि बंगाल में इंगलैंड के कपड़े की खपत देशी कपड़े की रक्षा के लिए लगाई जाने वाली चुंगी लगाये बिना ही होती है।

"यह कि बंगाल के कपड़े पर इंगलैड में निम्न अनुसार आयात-कर लगाया जाता है। तैयार सूती माल पर १० फी सदी। तैयार रेशमी माल पर २४ फी सदी।❀

"आवेदक बहुत नम्रतापूर्वक आपसे इन अवस्थाओं पर विचार करने के लिए कहते हैं और उन्हें पूर्ण विश्वास है कि इस बड़े साम्राज्य के निवासियो के लिए किसी भाग के व्यवसाय के विरुद्ध मार्ग बन्द करने की इच्छा इंगलैंड की नहीं है। अतएव वे ब्रिटिश प्रजा को प्राप्त सुविधाओ को पाने की प्रार्थना करते हैं, और नम्रता-पूर्वक आपसे प्रार्थना करते हैं कि बंगाल का बना ऊनी और सूती कपड़ा इंगलैंड में बिना चुंगी लिये ही जाने दिया जाय या उन पर उसी दर से चुङ्गी लगाई जाय जो बंगाल में इंगलैंड के कपड़े पर लगाई जाती है।

"उनको पूर्ण तौर से विश्वास है कि आपका उदारतापूर्वक व्यवहार देश, जाति या वर्ण का विचार किये बिना सम्पूर्ण ब्रिटिश प्रजा के लिए होगा।"

❀यह आयात-कर पहले बहुत अधिक थे लेकिन जान पडता है कि जब भारतीय व्यवसायी लगभग कुचले जा चुके थे तब वे कर कुछ कम किये गये। इसलिए अंग्रेजी माल से उनके मुकाबला करने की सम्भावना नहीं थी।

११७ प्रतिष्ठित भारतीयों द्वारा हस्ताक्षर किया हुआ यह प्रार्थना-पत्र निरर्थक सिद्ध हुआ। जब उपर्युक्त आवेदन पत्र निरर्थक हुआ तो भारतीय व्यापार से सम्बन्ध रखने वाले कुछ इंगलैंड के व्यापारियो ने अपनी लोकोपकार की भाव ना दिखलाने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टरो के नाम १३ अक्टूबर सन् १८३२-ई० को एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने लिखा था:

"माननीय कोर्ट के सन्मुख हम लोग एक मामला पेश करने की प्रार्थना करते हैं जो भारतीय व्यवसायियो और विदेश को माल भेजने वाले व्यापारियो के लिए बहुत ही अधिक कठिनाई का है। माननीय कोर्ट इस पर विचार करे और उनकी जिनकी तरफ से हम प्रार्थना कर रहे हैं तथा भारतीय व्यापार से रखने वाले हम व्यापारियो की भी असुविधाएं दूर करे।

२—"बंगाल में तैयार कपड़े के थान पर कलकत्ता के अन्दर आने पर अढ़ाई प्रतिशत देशी चुङ्गी लगती है। उस माल के इंग-लैंड या दूसरी जगह निर्यात करने पर चुंगी वापस नहीं की जाती; जब कि नील, कपास, सन और तम्बाकू पर लगी हुई सम्पूर्ण देशी चुंगी इनके इगलैंड निर्यात किये जाने पर वापस कर दी जाती है।

३—"यह माना जा सकता है कि यह भेद जिस समय किया गया था उस समय पीछे बतलाई हुई वस्तुएँ भारत की मुख्य उपज मानी जाती थीं और उपजाने वालो के लिए यह उचित समझा जाता था और जब कि देशी कपड़े की रक्षा करने की नीति और उपयुक्तता इतनी

स्पष्ट नहीं थी; उन दिनों भारत में अंग्रेजी तैयार माल का आयात बिल्कुल नहीं के बराबर था।

४—"किन्तु अब, जब कि अँग्रेजी मालसिर्फ ढाई प्रतिशत की चुंगी देकर उस देश में बहुत अधिक पहुँचता है और जब कि भारत में तैयार माल के इंगलैंड में मँगाये जाने पर सूती माल पर दस फ सदी और रेशमी माल पर बीस फी सदी चुंगी चुकानी पड़ती है यह हम लोगों को केवल उचित और न्याय-युक्त ही नहीं जान पड़ता बल्कि भारतीयों के प्रति बुद्धिमानी की नीति का कार्य्य जान पड़ता है कि जहाँ तक सम्भव हो, चुंगी की इतनी अधिक असमानता, जो ब्रिटिश तैयार माल को इतनी अधिक विशेष सुविधा देती है, कम की जाय। कलकत्ते से इंगलैंड भेजे जाने वाले थान पर लगाई गई ढाई प्रतिशत की देशी चुंगी को लौटाने के अवसर से बढ़ कर कोई दूसरी तात्कालिक छूट कम से कम लाभ के साथ नहीं की जा सकती।

५—"माननीय कोर्ट के सन्मुख इस मार्ग का प्रस्ताव करते हुए हम ब्रिटिश व्यवस्थापक सभा की नीति की ओर ध्यान आकर्षित कराने की प्रार्थना करते हैं जिनके अनुसार इंगलैंड में तैयार हुआ रेशमी माल पर उसके विदेश में रवाना किये जाने के समय प्रति पौंड वजन की वस्तु का मूल्य १४ शि० या इससे अधिक होने पर प्रति पौंड वज़न पर साढ़े तीन शि० यानी १४ शि० पर पचीस प्रतिशत के हिसाब से राजकीय छूट सहायता रूप दी जाती है। यह छूट की रकम उस चुंगी के बराबर समझी जाती है जो उन वस्तुओं पर लगायी गयी होती है और

हमें विश्वास है कि माननीय कोर्ट भारत की विशेष परिस्थिति पर न्याय कर भारतीय व्यवसायियों के साथ वही नीति बर्तेगा जिसका पालन अँगरेजी सरकार अँगरेजी व्यवसायियों के साथ करती है।

६—"इँगलैंड में आने वाले भारत के ऊनी और सूती माल पर की चुँगी हटाने के लिए अँगरेजी सरकार को एक दरख्वास्त दी गई थी जो मंजूर नहीं की गई, हालाँ कि उसपर बहुत ही अधिक प्रतिष्ठित भारतीयों के बहुत अधिक संख्या में हस्ताक्षर थे और हम लोगों का विचार है कि इस निराशा के बाद इस समय माँगी जाने वाली सुविधा की महत्ता बहुत अधिक बढ़ जाती है।"

किन्तु सचमुच दुकानदारी के साथ साथ लोक-सेवा की भावना नहीं चला करती। इसलिए ये दुकानदार, जिनके उपर्युक्त पत्र में हस्ताक्षर थे' इस पत्र को भेजते समय अपनी लाभ-हानि को भूले नहीं थे। इंगलैण्ड भेजे गये भारतीय माल पर के ढाई प्रतिशत विदेशी चुंगी वापस कराने की सुविधा दिलाने के लिए उनकी सिफारिश केवल सेवा या परोपकार की भावना से ही नहीं हुई थी। किन्तु इस उपर्युक्त पत्र की भी वही अवस्था हुई जो ११७ भारतीयों के आवेदन-पत्र की हुई थी।

अधिकारी अपने हाथ की सारी शक्ति लगा करके भारत के व्यवसाय को बरबाद कर देने पर तुले हुए थे। भारतीय आयात माल पर इंगलैण्ड में बहुत भारी कर लगता था किन्तु यह दलील दी जा सकती है कि इंगलैंड और इंगलैंड से जिन देशों को भारतीय माल पुनः निर्यात किया जाता था वे ही भारतीय तैयार माल के एक मात्र

बाजार नहीं थे, और भारतीयों के लिए उनका विस्तृत देश ही काफी बड़ा बाजार था। इसलिए हम यह दिखलाने जा रहे हैं कि भारत में भी यहाँ के व्यवसाय को कुचलने और व्यवसायियों को कमज़ोर बनाने के लिए दूसरे मार्गों का अनुसरण किया जाता था। यह समझा जा सकता है कि देशी व्यवसाय का गला घोटने के उद्देश्य से भारत के तैयार माल पर देश के अन्दर मार्ग-कर और आयात-निर्यात कर लगाये गये थे। चुंगी-अफसरों की बेईमानी और अनुचित व्यवहार की लोगों में बदनामी होने के कारण भारतीय सरकार को इस ओर ध्यान देना पड़ा था। लार्ड बेंटिंक के समय इन चुंगियों को हटाने का प्रश्न खड़ा हुआ। इस मामले की जाँच कर सम्मति देने के लिए सर चार्ल्स ट्रेवीलियन नियुक्त हुए। सर चार्ल्स का तैय्यार किया हुआ वक्तव्य एक बहुत ही विद्वत्तापूर्ण सरकारी कागज़ है।

इस वक्तव्य की आलोचना करते हुए लार्ड टेनमाउथ के पुत्र माननीय फ्रेडरिक शोर ने मार्ग-कर और देशी चुंगी के रूप का बहुत अच्छा वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है:—

"मार्ग-कर और भीतरी आयात-निर्यात-कर की देशी पद्धति बहुत कुछ महसूल के ढंग की है। वह प्रति बैल की लादी या बोझ, टट्टू की लादी, ऊँट की लादी या गाड़ी के बोझ पर कुछ निश्चित रक़म होता है। माल की कीमत का ध्यान नहीं रक्खा जाता। यह साधारणतया इतना कम होता है कि लोगों को छिपाकर माल मँगाने वा भेजने का लालच नहीं होता। चुंगीघर के अफसरों की ओर से तलाशी लेने के लिए कोई बहाना नहीं गढ़ा जाता।

किसी रवन्ना या माल के ले जाने के अधिकार - पत्र की आवश्यकता नहीं होती। किसी तरह की व्यवस्था का पालन नहीं करना पड़ता—यह महसूल सम्भवतः प्रत्येक चालीस पचास या साठवें मील पर चुकाने पड़ते जिससे वास्तव में माल पर उसके ले जाने की दूरी के अनुपात से महसूल देना पड़ता जो रास्ता पार करते जाने पर किस्तों में चुकाया जाता।

"अँगरेजों का,पक्षपात की दृढ़ धारणा के कारण, जो साधारणतया बहुत अधिक पाई जाती है, यह विचार है कि भारत की प्रत्येक देशी रीति या पद्धति उनकी इंगलैंड से लाकर प्रचारित की हुई रीतियों वा पद्धतियो से,उनकी बुद्धिमता के विचार से,अवश्य ही तुच्छ होगी। इस कारण उन्होंने देशी पद्धति को पूर्णतया रद्द कर दिया और ऐसी पद्धति चलाना चाहा जो इन झंझट के महसूलों से बरी करे। अँगरेजी पद्धति जिन सिद्धान्तों पर बनी थी वह व्यापारी से सारा महसूल तुरन्त लेकर उसे एक रवन्ना देने की थी, जो उसे सम्पूर्ण यात्रा के अन्त तक किसी प्रकार की रकम चुकता करने से बरी कर दे। पहले यह सोचा जा सकता है कि जब यात्रा छोटी या लम्बी होने की हालत में चुँगी की एक ही निश्चित रकम चुकता कराना था तो चुंगी की रकम उन रकमों की औसत होनी चाहिए जो देशी कर-पद्धति के अनुसार अधिक और कम दूरी के लिए ली जाती थी; किन्तु नहीं;—चुँगी की रकम उन महसूलों का औसत रक्खी गई जो अधिक से अधिक दूरी तक जाने वाले माल पर लगती थी; इस प्रकार दर को एक करने के बहाने चंगी को बहुत अधिक बढ़ा दिया गया। यह पहला नमूना था जिसे

व्यापारियो ने अँगरेजी सरकार के उच्च कोटि के लाभ के रूप में अनुभव किया, जिसके अनुसार उनके व्यापारिक माल पर इतना अधिक कर लगाया गया जितना उन्होने कभी नहीं चुकाया था।

"दूसरी बात रवन्ना के सम्बन्ध में है जो व्यापारी अपना माल रवाना करने के समय पाता है। यह बहुत झगड़ा खड़ा करनेवाला होता है। मान लो एक व्यापारी ने फतेहगढ़ से एक नाव भर माल कलकत्ते को भेजा। उस शहर में उसके पहुंचने पर, जब तक वह नाव पर के सारे माल को एक मुश्त ही बेच नही डालता उसको पहले का मिला हुआ चुंगी का रवन्ना किसी काम का नहीं। उसे वह चुंगी-घर ले जाना पड़ता और उसे अपने माल के भिन्न-भिन्न हिस्से के लिए, जिन्हें वह दूसरो के हाथ बेच चुका होता, दूसरे कागज़ बदल कर लेने पड़ते। इसके लिए उसे प्रतिशत आठ आने के हिसाब से अतिरिक्त चुंगी देनी पड़ती। किन्तु उसे चुंगी-घर जाने पर बेरोक बिक्री में बाधा पड़ने और माल को उठाने-धरने में जो समय खराब होता उसके मुकाबले यह छोटी बात थी। एक रवन्ना सिर्फ साल भर चालू रहता। यदि इस अवधि के बीतने पर माल बिना बिके रह जाय तो व्यापारी को बदले में दूसरा या एक नया रवन्ना मिल सकता है किन्तु उसे साल पूरा होने के पहले अपना पुराना रवन्ना जरूर दाखिल करना चाहिए और साबित करना चाहिए कि माल वही है तब उसे प्रतिशत आठ आना देने पर नया रवन्ना मिलेगा। यदि वह ऐसा न करे तो उसे चुंगी की पूरी रकम फिर से देनी पड़ेगी। सचमुच माल को एक ही सिद्ध करने की कठिनाई, चुंगी-घर में जाँच-पड़ताल करने में देरी

और समय की हानि प्रायः इतनी अधिक होती है कि उनमें से अधिकांश कुछ कम झंझट विचार कर तुरन्त सारी चुंगी को देना कबूल करते हैं। इस रवन्ना के तरीके से व्यापार को और भी बहुत अधिक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। उनमें से मैं एक का यहाँ पर जिक्र करता हूँ। अनेक दशाओं में व्यापारियों के लिए चुंगी देना और रवन्ना दे सकना नामुमकिन होता है; जब उन्हें किसी मेले या बाज़ार में जाना होता है (जो प्रायः चुङ्गी-घर से पचास या अस्सी मील के दूर के स्थानों तक लगते हैं) तो वे पहले ही यह नहीं बता सकते कि वे वहाँ पर किस किस्म का या कितना माल खरीदेंगे; क्योंकि मेले पर पहुंचने पर वे कुछ किस्म का माल बहुत सस्ता पा सकते हैं जिसका उन्होंने पहले विचार ही न किया हो इसलिए वे उसे प्रचुर मात्रा में खरीद सकते हैं। उस माल को लेकर वे मेला से रवाना हों और आगे के चुङ्गी-घर पर चुङ्गी चुकता करने का उनका ईमानदारी से इरादा हो तो भी चुङ्गी-घर पहुंचने के पहले ही दुर्भाग्य-वश उन्हें उससे दूर ही चुङ्गी-चौकी पार करनी पड़ेगी और कानून के मुताबिक उनका माल छीना जा सकता है क्योंकि रवन्ना के बिना कोई माल चौकी पार नहीं कर सकता।"

शोर ने इसके बाद चुंगी की चौकियों और उनको व्यापारियों के माल की तलाशी लेने के अधिकार होने से व्यापार में बहुत अधिक बाधा पहुँचने की चर्चा की है। वे लिखते हैं:—

"चोरी से माल मँगाना रोकने के लिए बहुत अधिक संख्या में चुंगी की चौकियाँ स्थापित करने की जरूरत समझी गई थी।

उनमें से प्रत्येक में चुंगी के आदमी रहते थे, जिनका काम रवन्ना से व्यापारियों के माल का मिलान करना था। नियमानुसार कोई भी चुंगी-चौकी चुंगी-घर से चार मील से अधिक की दूरी पर नहीं हो सकती थी। किन्तु व्यवहार में इस नियम की बिल्कुल ही परवाह नहीं की जाती थी और यह चुंगी-चौकियाँ देश भर में सब जगह फैली हुई थीं। कभी कभी तो यह चुंगी-घर से साठ या सत्तर मील की दूरी पर होती थीं। इन चौकियो में नियत अहलकारो के अधिकारों पर हम विचार करेंगे। उनको माल की पूरी तरह तलाशी लेने का अधिकार था। माल की किस्म, मात्रा, बंडलों की संख्या, आकार और माल की कीमत तय करने का काम उन्हीं पर था और वे ही तय कर सकते थे कि यह सब बातें रवन्ना से मिलती जुलती हैं कि नहीं। यह साफ है कि इसमें व्यापारियों को समय और धन की इतनी अधिक हानि उठानी पड़ती कि यदि कानून को ठीक तरह चुंगी का प्रत्येक अहलकार काम में लाता तो देश के व्यापार का पूरी तरह अन्त हो जाता।

"यह अक्सर पूछा जाता है कि जिनको इतनी झंझटें उठानी पड़ती हैं वे अपनी शिकायतो को सामने क्यो नहीं रखते? सिर्फ इसलिये कि इससे उन्हें लाभ के बदले हानि होगी। उनके लिए कोई बचत का रास्ता पाना या तो नामुमकिन है या उसमें इतना अधिक समय और व्यय लग सकता है कि दवा रोग से भी अधिक बुरी हो सकती है।

"हम लोग लोगों की गरीबी, देशी व्यापार की अवनति तथा

व्यवसाय की उन्नति के स्थान पर अधोगति की जोरों से शिकायत सुनते हैं। क्या इसमें कोई आश्चर्य है? देशी चुंगी-घरों द्वारा व्यापारियों को जो असह्य कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं उनसे क्या दूसरे परिणाम की आशा की जा सकती है? श्री टेवीलियन लिखते हैं कि 'देश के अन्दर व्यापारी का पेशा अपमानजनक और निकृष्ट समझा जाता है क्योंकि इसमें अधिक से अधिक प्रतिष्ठित व्यक्ति को भी चुंगी-घर के छोटे से छोटे अहलकार के पूरी तरह आधीन रहना पड़ता है।' जब प्रान्तों में बेकार पूँजी रखने वाले प्रतिष्ठित व्यक्तियों से, जो पूँजी के लगाने की कठिनाई भी सम्भवतः प्रकट करते हैं, यह पूछा जाता है कि वे अपनी पूँजी को व्यापार में क्यों नहीं लगाते तो वे तुरन्त सदा यही उत्तर देते हैं कि वे चुङ्गीघर के चार रुपये माहवारी तनख्वाह पानेवाले प्रत्येक छोटे अहलकार की खुशामद करने की दीनता नहीं दिखा सकते जिसे उनके माल की तलाशी लेने के बहाने माल को रोक रखने का अधिकार होता है......... दिल्ली के कुछ निवासियों ने पूँजी को काम में लाने के विचार से उसे बनारस के दुशाले के व्यापार में लगाया। नतीजा यह हुआ कि उनका माल चुंगी-घरों में बराबर रोक लिया जाता रहा और उन्हें बहुत ही अधिक हानि उठाने के बाद यह रोजगार तोड़ देना पड़ा। भारत के गरीब निवासी उन सब बातों और अन्य सभी कठिनाइयों और अत्याचारों को सहन करते हैं जो हम लोगों के द्वारा उन्हें उठाने पड़ते हैं, क्योंकि वे इनसे बचत पाने को आशा नहीं देखते; किन्तु उन भारी कठिनाइयों को सुनिये जो बुखारा के व्यापारियों द्वारा लेफ्टि-

नेन्ट बर्नीज़ से कही गई थीं जो हम लोगों के चुँगी-घरों की प्रणाली से बिल्कुल परिचित नहीं थे। उन्होंने वास्तव में घोषित किया कि ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के व्यापारियों को जो बहुत ही अधिक मुसीबतें और मुश्किलाहटें उठानी पड़ती हैं वे रूस, पेशावर, काबुल वा बुखारा में होने वाली कठिनाइयों से भी बहुत ही अधिक होती हैं!''.........

''व्यवसाय पर इस प्रबन्ध का यही असर पड़ता है कि सब कुछ बहुत बड़े पैमाने पर निरुत्साहित होता है और व्यवसाय की विभिन्न निर्माण-क्रियायें तुच्छ ढंग से एक ही स्थान पर होती हैं; उसको कुछ भागों को करने में लगाये हुये आदमी चाहे जितने निकृष्ट हो और स्थान चाहे जितना अनुपयोगी हो। जब व्यवसाय बड़े पैमाने पर किया जाता है तो प्रायः उसकी सामग्रियों को थोड़ी थोड़ी मात्रा में बहुत दूर से मँगाना पड़ता है जिससे बड़े व्यवसायी को दोहरी चुँगी चुकानी पड़ती है; एक बार तो कच्चे माल पर और दूसरी बार तैय्यार माल पर, जब कि छोटा व्यवसायी और व्यापारी जो कच्चा माल लेने या अपना माल बेचने चुंगी-घर से बाहर नहीं जाता, सभी चुंगियों के चुकता करने से बच जाता है। हमारे असाधारण प्रबन्ध के कारण दुशाले को दोहरी चुँगी, जो कुल बीस प्रतिशत के लगभग हो जाती है, चमड़े को तिहरी चुँगी, जो सब पन्द्रह फीसदी हो जाती है और रूई को चौहरी चुंगी जिस पर कपड़ा बुने जाने के पहले ही कुल साढ़े सत्रह प्रतिशत हो जाती है, चुकानी पड़ती है। इस प्रकार बहुत सी वस्तुओं को दुगनी और तिगुनी चुँगी चुकानी पड़ती है क्योंकि जो

रखना कच्चे माल के लिये लिया गया होता है तैय्यार माल के लिए काम में नहीं आता।"

फिर बाद में श्रीयुत शोर ने लिखा था:

"हम लोग वर्षों से अंग्रेजी दक्षता और पूँजी की आश्चर्य्य-जनक सफलता पर इसलिए गर्व करते आ रहे हैं कि कपास भारत से इंगलैंड में मँगा कर, उससे इंगलैंड में कपड़ा तैय्यार कर, भारत में लाकर भारतीयों के मुकाबले हम सस्ता बेचते हैं। ऊपर बताये हुए असह्य प्रबन्ध के आधीन क्या ऐसा होना किसी प्रकार आश्चर्यजनक है और खास कर जब कि भारत की प्रधान व्यापारिक वस्तुएँ इंगलेंड में जाने के लिए सर्वथा निषिद्ध हैं ? वास्तव में यदि यह अधिक दिनों तक चालू रहे तो भारत थोड़े ही दिनों में अपने निवासियों के लिए किसी प्रकार पूरा पड़ सकने योग्य खाद्य-सामग्री, कुछ भोजन पका सकने के लिए मिट्टी के रद्दी-सद्दी बर्तन और कुछ मोटे-झोटे कपड़ों के अतिरिक्त कुछ भी उत्पन्न न कर सकेगा। सिर्फ इस अत्याचारी शक्ति को हटाइए। सब तख्ता शीघ्र ही पलट जायगा। दूसरी बात महान आत्म-सन्तोष की है जिसके साथ हम उस विश्वास की चर्चा करते हैं जो लोगों द्वारा अपनी सरकार में इस कारण जमा मालूम पड़ता है कि वे भारी रकमें सरकारी तमस्सुकों में लगाते हैं। किन्तु वे अपनी पूँजी का क्या करें ...... उनके अनजान में सरकार ने वाणिज्य और व्यवसाय को निर्मूल करने के लिए अपनी शक्ति भर सब कुछ किया है जिसे वह, यदि अपना मार्ग नहीं बदलती तो थोड़े और दिनों में पूर्णतया सत्यानाश कर देगी (बारह या चौदह साल

पहले फरूखाबाद से माल भर कर आनेवाली नावों की संख्या आज से कम से कम तिगुनी थी) पांच या चार फी सदी सूद कुछ भी न मिलने की अपेक्षा अच्छा है किन्तु यह जान सकने के लिए अधिक बुद्धि की आवश्यकता नही कि यदि पश्चिमोत्तर प्रान्त (अब युक्त प्रान्त) की ज़मीन का बन्दोवस्त इस्तमरारी हो जाय और यदि वाणिज्य और व्यवसाय को पनपने दिया जाय,—उनको प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं है,—तो सरकार इतनी नीची दर पर ऋण पा सकने पर असमर्थ ही नहीं होगी बल्कि इस समय के तमस्सुकों का मूल्य बहुत शीघ्र गिर जायगा।"

यह सच है कि बाद में देशी मार्ग-कर हटा दिया गया था किन्तु उस समय तक नहीं जब कि ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के उद्योग-धन्धे इतने विनष्ट हो चुके थे कि उनके पुनरुद्धार की आशा नहीं रह गई थी। इंगलैण्ड के ईसाई निवासी सन १८१३ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार के हटाये जाने के बाद जिस समय भारत के साथ अपने निर्यात व्यापार के विस्तार पर अपने को कृतकृत्य समझ रहे थे भारतीय कपास और थानों के इंगलैण्ड भेजे जाने के निर्यात व्यापार की क्या हालत थी? इसका जवाब नीचे दिये हुये आँकड़े से मिलेगा :

साल	गाँठे	थान
१८१४-१५	३८४२	
१८१८-१९	५३६	

साल	गाँठे	थान
१८२३-२४	१३३७	१०६५१६
१८२४-२५	१८७८	१६७५२४
१८२५-२६	१२५३	१११२२५
१८२६-२७	५४१	४७५७२
१८२७-२८	७३६	५०६२४
१८२८-२९	४३३	३२६२६
१८२९-३०	०	१३०४३

सूती थानों की संख्या प्रति वर्ष घटती ही गई और यह अवस्था भारतवासियों के भौतिक अभ्युदय की परिचायक नहीं थी।

भारत का निर्यात व्यापार

भारत के निर्यात (विदेशो को जाने वाले माल का) व्यापार पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। निर्यात व्यापार मुख्यतः कच्चे माल का है। भारतीय उद्योग धन्धे की पर्याप्त उन्नति के लिए भारत से कच्चे माल का निर्यात भी रोकना चाहिए। इससे भारत को तनिक भी लाभ नहीं पहुँचा है। भारत से अन्न जैसे गेहूँ, चावल और दाल बहुत अधिक बाहर को जाता है। उनके निर्यात से उनका दाम चढ़ता जाता है और महँगी के समय भारत में उनका बहुत अधिक अभाव अनुभव किया जाता है। निर्यात व्यापार कुछ हद तक उन अकालों के लिए जिम्मेदार है जो भारत के विस्तृत प्रदेशों को अक्सर उजाड़ कर डालता है। प्रत्येक सभ्य सरकार का उद्देश्य यथासम्भव जीवन-युद्ध को कम करना होता है, उसे बढ़ाना नहीं। खाद्य पदार्थों के निर्यात से इससे बिल्कुल उलटा फल होता है। इससे जो सरकार सर्वथा लोगो के हित के लिए स्थापित हो उसे अन्न के निर्यात को प्रोत्साहन नही देना चाहिए किन्तु भारत की सरकार के साथ एक विचित्र बात है। भारत निवासियों के हित का परित्याग इगलैण्ड के निवासियों के हित के लिए किया जाता है। जब इंगलैण्ड कृषि-प्रधान था तो वहाँ के खास निवासियों के हित के लिए "अन्न कानून" बने हुए थे। राष्ट्र को अपनी प्रजा के लिए कैसी हित की भावना रखनी पड़ती है इसे दिखाने के लिए इन "अन्न कानूनो" की चर्चा करना आवश्यक है। लेकी लिखता है;

"देश की पुरानी नीति अन्न के निर्यात के लिए बिल्कुल निषेध की थी किन्तु चौदहवीं शताब्दी के अन्त में कृषि से अधिक उपज होने पर यह नीति पलट दी गई और कई बार दाम अत्यधिक चढ़ने उतरने के बाद चार्ल्स द्वितीय के कानून ने एक ऐसी पद्धति चलाई जो क्रान्ति के समय चालू थी। इस कानून के अनुसार बेरोक निर्यात की उस समय तक आज्ञा थी जब तक कि स्वदेश की दर तिरपन शिलिंग और चार पेंस प्रति हंडरवेट से अधिक न हो जाती। देशी बाजार में इस कीमत के पहुंचने तक आयात पर अत्यधिक चुङ्गी द्वारा रुकावट रक्खी जाती। इसके लिए प्रति हंडरवेट आठ शिलिङ्ग के हिसाब से भारी चुङ्गी लगाई जाती। क्रान्ति के समय एक नयी नीति निर्धारित की गई। आयात पर चुङ्गी तो वही रक्खी गई किन्तु निर्यात की केवल आज्ञा ही नहीं दी गई बल्कि देशी दर अड़तालिस शिलिङ्ग से अधिक न होने पर प्रति हंडरवेट पाँच शिलिङ्ग की राजकीय सहायता के रूप में छूट देकर उसे प्रोत्साहन दिया जाता। आर्थर यङ्ग ने अन्न कानून का विशेष अध्ययन किया है। वह इस अँग्रेजी कानून को राजनीतिक बुद्धिमत्ता का सब से बढ़िया नमूना समझता है। उसका कहना है कि हालैंड की तरह एक ऐसे देश के लिए अनाज का बिल्कुल बेरोक व्यापार बहुत घातक होता जो अपनी कृषि पर ही बहुत कुछ निर्भर करता है। साथ ही स्पेन, पुर्तगाल, इटली के बहुत से भाग और उस शताब्दी के अधिकांश भाग में फ्राँस में अनाज के निर्यात की सर्वथा निषेध की जो पद्धति थी वह भी एक अनाज की उपज भरपूर ढङ्ग से करने वाले देश के लिए सर्वथा अनुपयोगी थी।

दाम बहुत अधिक घटते बढ़ते हैं। किसी साल इतने गिर जाते हैं कि किसान बरबाद हो जाते हैं और किसी साल इतने बढ़ जाते हैं कि किसान भूखों मर जाते हैं। यह इस देश के अत्यधिक सौभाग्य की बात है जिससे ऐसी युक्ति की गई जो अनाज की दर तुरन्त गिरा कर कृपि को प्रोत्साहित करती थी। यह नीति की बहुत हो अधिक बुद्धिमत्ता की बात थी और सम्पूर्ण योरप के साधारण विचारो के बहुत ही विरुद्ध थी। वह लिखता है कि इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं कि छूट रूप में राजकीय सहायता देने की निर्यात की यह पद्धति बहुत ही अत्यधिक राष्ट्रीय महत्व की रही है।"

भारत निवासियों को सस्ता भोजन देने के लिए क्या सरकार भारत में भी अन्न कानून की इन बातों को प्रचारित नहीं कर सकती? किसी सरकार को जिसे अपनी प्रजा के साथ सहानुभूति हो ऐसा करने में न हिचकिचाना चाहिए। भारतवर्ष इस समय मुख्यतयः कृषि-प्रधान देश है और जो कानून इंगलैंड के लिए इतने हितकारी सिद्ध हुए, जबकि वह कृषि प्रधान देश था तो वे भारत के लिए वैसे ही हितकारी अवश्य सिद्ध होंगे।

महँगे और अकाल के साल अनाज की जगह दूसरा कच्चा माल भारत से बाहर जाता है। यह भी भारत के लिए हानिकर होता है। ये कच्चे माल महँगी के समय बहुत अधिक संख्या में मरे हुए जानवरों की हड्डियाँ और चमड़े होते हैं। चमड़े के इस निर्यात व्यापार से भारत के चमड़े के व्यवसाय को बहुत अधिक धक्का पहुँचता है। हड्डियों के

निर्यात से देश से एक बहुत ही उत्तम खाद देश के बाहर चली जाती है।

फिर कपास के निर्यात से इस देश में इसकी महँगी होती है और इससे भारत के सूती व्यवसाय की उन्नति में धक्का लगता है। बिनौले से एक बहुत उपयोगी तेल निकलता है और खली जानवरों के खाने के काम में आती है। इसलिए इसके निर्यात से बहुत हानि होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के निर्यात व्यापार से जो कि उस कच्चे माल का ही होता है, भारत को किसी प्रकार का लाभ नही पहुंचता। किसी भी कृषिप्रधान देश को, भारत को तो बिल्कुल ही नहीं, विदेशों में अपने कच्चे माल के बाजार की बिल्कुल आवश्यकता नहीं होती। इसके विरुद्ध इन सभी कच्चे मालों को भारत में उसके उद्योग धंधों की यथोचित उन्नित के लिए रोक रखने की आवश्यकता है। यदि भारत एक स्वतंत्र देश होता तो वह निर्यात व्यापार को कानून द्वारा रोक दिये होता। इंगलैंड को भी अपने उद्योग धंधे की उन्नति के लिए इसी मार्ग का अनुसरण करना पड़ा था। लेकी लिखता है:—

"अँग्रेजी ऊन या भेड को विदेशों में रवाना करने के अपराध में बहुत अधिक सख्ती के साथ विचार किया जाता था क्योंकि यह योरप के दूसरे प्रतिद्वंदी ऊनी व्यवसायियों की सहायता करना माना जाता था। इस अपराध का दंड सात वर्ष के कालापानी तक था। इससे कुछ ही कम सख्त सजा उन लोगों को दी जाती जो मुख्य अँग्रेजी व्यवसायों में प्रयुक्त कलों को विदेशों में भेजने या जो कारीगरों को विदेश में जाने के लिए प्रोत्साहित करते। कोई कुशल

श्रमिक अपने व्यापार को विदेशी बाज़ारो में ले जाता तो यदि वह अँग्रेजी राजदूत द्वारा आगाह किये जाने पर ६ महीने के अन्दर न लौट आता तो वह परदेशी घोषित कर दिया जाता। उसकी तमाम जायदाद ज़ब्त कर ली जाती और वह वसीयत या दान पाने के अधिकार से वंचित हो जाता;

किन्तु ब्रिटिश सरकार भारत के लिए निश्चय ही वह नहीं कर सकती जो इंगलैड के व्यावसायिक उन्नति के लिये लाभकर सिद्ध हुआ। इसके विपरीत यह कच्चे मालो की निर्यात की सुविधा के लिये सब कुछ करती जा रही है। इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया की बचत की भारी रकमे भारतीय व्यवसाय की उन्नति के लिए भारतीय बंकों को नहीं मिल सकतीं बल्कि देश के विदेशी व्यापार को सुविधा देने के लिए विदेशी बंकों को दी जाती है। इससे भारत का सर्वाधिक हित किस हद तक पूर्ण होता है इसकी चर्चा नीचे की जाती है।

क्या विदेशी व्यापार से भारत को लाभ पहुँचता है?

सैय्यद मोहम्मद हुसेन एम० आर० ए० सी० सन् १८८४ ई० में प्रकाशित 'भारत की उन्नति के मार्ग में भारी कठिनाइयाँ और आवश्यकताएँ' नाम की अंग्रेजी में लिखी अपनी बहुत ही अधिक मूल्यवान पुस्तिका में लिखते हैं :

"यह बड़े दुःख की बात है कि हमारे शुभचिंतक लोगों की अवस्थायें और आबादी की सघनता का विचार किये बिनाही यह नतीजा निकालते हैं कि व्यापार (वर्तमान रूप में) के प्रोत्साहन और आवागमन के साधनो की उन्नति से भारत का हित होगा। उन्हें यह

विचार करना चाहिये कि इंगलैण्ड प्रति वर्ग मील केवल तीन सौ नब्बे व्यक्तियों की आबादी होने पर अपने निवासियों के उपयोग लायक काफी पैदा नहीं कर सकता और वह दूसरे देशों की उपज पर निर्भर करता है जब कि भारत की आबादी प्रति वर्ग मील चार सौ सोलह के हिसाब से होने पर उसके खाद्य पदार्थों को .शान शौकत और ऐश आराम की वस्तुओं से बदल कर उसके व्यापार को बढ़ाने की आशा की जाती है। हमें इस बात की गहराई पर जाना चाहिए और दोनों देशों की कृषि की अवस्था की तुलना करनी चाहिए। मदुंमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार युक्तप्रान्त (इसे हमने उदाहरण के लिए लिया है) की कृषि योग्य भूमि ५४०,४२० वर्ग मील है जो ३४५८६८८० एकड़ के बराबर है और आबादी ४४१०७८६९ है। इस प्रकार प्रति व्यक्ति औसत खेती ·७८ एकड़ है। इङ्गलैण्ड की खेती के काम आने वाली भूमि ५०४३२९८८ एकड़ है और आबादी ३५२७८९९९ है (सन् १८८२) अर्थात् प्रति व्यक्ति १·४२ एकड़ है। इङ्गलैण्ड की बहुत अधिक उन्नति और वैज्ञानिक कृषि में लगने वाली भारी पूँजी, वैज्ञानिक खाद तथा यन्त्रों की सहायता से प्रति एकड़ तीस बुशल उपज होने पर भी उसकी उपज उसके बाशिन्दों के लिए पूरी नहीं पड़ती, फिर भी भारत खेती के लचड़ तरीकों, छोटे-मोटे खेतों और औजारों, सिंचाई के साधनों की बहुत कमी होने पर प्रति एकड़ केवल तेरह बुशल (अकाल की विज्ञप्ति के अनुसार अथवा अठारह बुशल अवध गज़ेटियर के हिसाब से) होने से व्यापार द्वारा अर्थात् अनाज को विदेशों

में भेजकर और आवागमन के साधनों की उन्नति करने से सुखी होने की आशा की जाती है। इस व्यापार का यह नतीजा होता है कि यदि बुरा साल आता है या किसी साल सूखा पड़ता है तो देश में अकाल का प्रकोप होता है। हजारों निवासी असहाय होकर मर जाते हैं और देश के सब कार्य अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। साल के चार महीनों में मई, जून, दिसम्बर और जनवरी में निम्न श्रेणी के क़िसान जङ्गली घास-पात और जङ्गली फल तथा आम और महुआ खा कर अथवा महाजनों से अनाज उधार लेकर पेट भरते हैं।

भारतीय व्यवसाय की बरबादी

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बोर्ड आफ कन्ट्रोल ने भारत के व्यापार के सम्बन्ध में एक प्रश्न-माला तैयार की थी। इनमें कुल ११ प्रश्न थे और इस सूची में यह विचित्रता थी कि किसी भारतीय कारीगरी की उन्नति के सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं था। इन प्रश्नों के उत्तर इतने ज्ञान-प्रद हैं और वे भारतीय कारीगरी की बरबादी के सम्बन्ध में इतना प्रकाश डालते हैं कि उनके उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

पहला प्रश्न यह था, "सन १८१४ ई० में व्यापार को बेरोक करने के बाद से भारत के साथ व्यापार करने वाले व्यक्तियों को व्यक्तिगत व्यापार को बुरी तरह प्रभावित करने वाले कायदों को अथवा चुंगियों को कम कर या हटा कर क्या सहूलियतें दी गई हैं?"

श्रीयुत लारपेन्ट ने इस प्रश्न का इस प्रकार उत्तर दिया—"तैयार माल पर का आयात-कर घटाकर मूल्य के हिसाब से $2\frac{1}{2}\%$ कर दिया गया है और बहुत सी मुख्य वस्तुओं पर से आयात कर बिल्कुल हटा लिया गया है।

"मार्ग-कर हल्के कर दिये गये हैं और अनेक दशाओं में उठा दिये गये हैं।

"सात मई सन् १८२४ के कानून के अनुसार ब्रिटिश रिआया को नील की खेती के लिए भी अपने नाम से जमीन रखने व ६०

साल के पट्टा रखने का अधिकार दे दिया गया है। पहले यह अधिकार कहवा के ही लिए दिया गया था।"

श्रीयुत सलिवन ने इसी प्रश्न के उत्तर में कहा था :

"सन् १८१४ में व्यापार के बेरोक बनने के बाद से रूई पर से सभी देशी चुङ्गी उठा ली गई है। चीन को भेजी जाने वाली रूई पर की चुङ्गी घटा कर ५% कर दी गई है और विलायत को रवाना होने वाली रूई पर से चुंगी बिल्कुल ही उठा ली गई है।"

श्रीयुत क्राफोर्ड का यह उत्तर था :

"चुङ्गी के सम्बन्ध में १८१३ के कानून में यह बात लिखी गई थी कि विलायती सरकार की स्वीकृत के बिना कोई नया कर न लगाया जाय। इसके अनुसार विलायत से घटाये हुए करों की नई दर भेजी गई और वह सन् १८१५ में भारतीय सरकार द्वारा कानून रूप में पास कर ली गई, सौभाग्य से विलायत के साथ व्यापार के लिए उस समय निश्चित चुङ्गी की दर साधारणतया या अब तक वैसी ही रक्खी गई है।"

ग्लासगो के व्यापार मंडल ने लिखा :

"ऊनी चीज़ें, धातु के सामान और जहाजी सामान के भारत में बिना चुङ्गी के पहुंचने से इन वस्तुओं के व्यापार में निःसन्देह बहुत अधिक सुविधा हो गई है"

इस प्रकार इस प्रश्न के उत्तरों से प्रगट होता है कि १८१३ ई० के कानून से विलायत के निवासियों को भारत के साथ व्यापार करने में अधिक सुविधायें मिली थीं।

दूसरा प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण था और उसके उत्तर विस्तृत थे, यह प्रश्न इस प्रकार था:

"सन् १८१४ ई० से भारत के साथ व्यापार किस हद तक बढ़ा है और इंगलैण्ड से भेजे जाने वाले माल में किस हद तक उन्नति हुई है।"

इस प्रश्न के उत्तर में बहुत से आवश्यक आंकड़े हैं जिनसे प्रकट होता है कि भारत के साथ इंगलैंड का निर्यात व्यापार किस हद तक बढ़ा।

पार्ल्यामेंट के कागजातों के अनुसार सन् १८१४, १५ में भारत के सब हिस्सों में विलायत से भेजे जाने वाले तैयार माल के मूल्य की रकम निम्नाङ्कित थी:

ईस्ट इण्डिया कम्पनी:—८२६५५८ पौंड
व्यक्तिगत व्यापार १०४८१३२ पौंड
कुल योग १८७४६९० पौंड

किन्तु श्रीयुत लारपेण्ट के अनुसार सन् १८३० ई० में भारत के साथ इंगलैंड का निर्यात व्यापार ३०,३२, ६५८ पौंड का था अर्थात् १६ वर्षों में ६२ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी:

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में श्रीयुत ब्रेकेन ने लिखा था।

"सन् १८१४ ई० से भारत के साथ इंगलैंड के निर्यात व्यापार की वृद्धि का अधिक भाग अँग्रेजी वस्तुएँ और तैयार माल है जो अँग्रेजी पूँजी और व्यवसाय का फल है। निम्नलिखित व्योरा विशेष कर सूती धागे के सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य है:

सन् १८१४ और २८ ई० में इंगलैंड से भारत को निर्यात की हुई मुख्य वस्तुओं के मूल्य का व्योरा।

चीजें	१८१४ पौंड	१८२८ पौंड	वृद्धि पौंड
मदिरा	५००२२	९९०३७	४६०१५
अँग्रेजी सूती माल	१०९४८०	१६२१५६०	१५१२०८०
अँग्रेजी सूती धागे का माल	७	३८८८८८	३८८८८१
मिट्टी के बर्तन	१०७४७	२६६२५	१५८७८
शीशा	६८४४३	११४६७८	४६५३५
लोहे के सामान और चाकू	२६८८३	७८७६५	५१८८२
लोहे के छड़ और कीलें	१०७६२७	१५५०३८	४७१११
लोहा पिटुवा और ढलुवा	५५१५४	१०२६२९	४७४७५
चमड़ा और जीन	२१६३७	४६१८७	२४५५०
लालटीन के सामान	२३४३४	३६१२०	१२६८६
कलें	६०४३	१०३६७६	९७६३३
जस्ता	०	५९४८६	५९४८६
बिसाती के समान	३८४९४	८४७३५	४६२४१"

इसी प्रश्न के उत्तर में श्रीयुत क्राफोर्ड ने लिखाथा :

सन १८१४ ई० का निर्यात (विलायत का) व्यापार १४०३३६२ पौंड

का था अर्थात् १४ वर्ष में तिगुनी वृद्धि हुई थो साथ ही १८१४ ई की दरें युद्ध के कारण चढ़ी हुई थीं और सन १८२८ ई० की दरें शान्ति के समय की गिरी हुई हैं।

इस प्रश्न के उत्तर में मैनचेस्टर के व्यापार-मंडल और ईस्ट इंडिया कमेटी ने लिखा था :

"लंकाशायर के बने कपड़ों की वृद्धि बेजोड़ अनुमान की जाती है, भारत और चीन को विलायत से भेजे गये विलायती सूती कपड़ों और धागों का व्योरा ५ जनवरी को समाप्त होने वाले वर्षों का १८१५ई० से १८३१ई० तक नीचे लिखी सारणी में है जो पार्ल्यामेंट से भेजे गये कागजों से तैयार की गई है।

	सफेद या सूती कपड़े—गज़	छपे या रंगे कपड़े—गज़	योग गज़	सूती पौंड
१८१५	२१३४०८	६०४८००	८१८२०८	८
१८१६	४८९३९९	८६६०७७	१३५५४७६	०
१८१७	७१४६११	९९११४७	१७०५७५८	६२४
१८१८	२४६८०२४	२८६८७०५	५३१६७२९	२७०१
१८१९	९६१४३८१	४२२७६६५	८८४२०४६	१८६२
१८२३	११७४२६३९	९०२०२०४	२०७४१८४३	२२२००
१८२५	१४८५८५१५	९६६६०५८	२४५२४५७३	१०५३५०
१८२९	२७०८६१७०	१०४९८६६६	३७१६६८३६	४५४९२१९
१८३१			५२१७९८४४	१४९४९९५

व्यक्तिगत व्यापार द्वारा इङ्गलैण्ड से कलकत्ता को आये हुए माल का व्योरा कलकत्ते के एक व्यापारी द्वारा ज्ञात हुआ है जो अगले पृष्ठ पर दिया गया है :

व्यापारिक वर्ष	सारी रकम	तांबा	लोहा	ऊनी माल	सूती माल	सूत
१८१३—१४	५३७६७७५	७८५८१	२३०५४७	१८४५२१	९१८३५	०
१६—१७	८०५११११२	५४२२६७	५८३६१०	२,८६१६	३१३१०२	०
२०—२१	११३२०७९७	२४४१४०३	६३२३९०	१७१९२६८	२५५५९०८	
२३—२४	१५८६२५३४	२३८२९३८	६६११३६	१६४८९८६	३७१६२७८	
२४—२५	१७६०७७८६	२२३५४३४	५६७२६२	१५८७३१४	४६२७७६५	८११४५
२५—२६	१२८६८६०७	४८६१६५	७४३६९८	८८६६८३	३६६५४६१	१४१३०५
२७—२८	१८६६१९५६	१९०३४०१	५९२०८४	२४१५७५९	४९३०१३९	१८४२११०

भारत के प्रायः प्रत्येक कच्चे माल की कीमत इंगलैण्ड में सन् १८३० ई० में १८१४ ई० की अपेक्षा बहुत अधिक सस्ती थी। इससे यह प्रगट होता है कि या तो १८१३ ई० के चार्टर कानून द्वारा जिन व्यक्तिगत व्यापारियों के लिए भारत में व्यापार करने का मार्ग खोल दिया गया था वे इस देश के साधारण निवासियों को अपना कच्चा माल इतने सस्ते दर पर बेचने के लिए मजबूर कर रहे थे जिन्हें अँग्रेज ईसाई तय कर देते थे अथवा भारत में उनके कच्चे माल क कम या बिल्कुल माँग न होने के कारण (क्योंकि विभिन्न उद्योग धन्धे और कारीगरियाँ बिल्कुल कुचल डाली गई थीं) उनको उपजाने तथा उत्पन्न करने वाले बहुत सस्ते दाम बेच देते थे। ऐसी परिस्थिति कपास, ऊन और कच्चे रेशम के सम्बन्ध की होगी। सन् १८७३ में एक पौण्ड (लगभग आध सेर) कपास के ऊन की कीमत एक शिलिङ्ग ३/४ पेन्स के कीमत की होती किन्तु सन् १८१५ ई० में यह ११ १/२ शि० और १८३१ ई० में ५ शिलिङ्ग (५ आना) ही रह गई। सन् १७९३ ई० में एक पौण्ड कच्चे रेशम की कीमत २१ शिलिङ्ग थी या सन् १८१५ ई० में १८ शि० १ पेन्स और सन् १८३१ ई० में १३ शि० ७ १/२ पे० ही रह गई। यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है यह मान लेना बिल्कुल गलत है कि सन् १८१३ ई० के पहले कीमतों की दर ऊँची होने का कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी को व्यापार करने का एकाधिकार था। उस समय भी लाभ का बहुत कुछ भाग दलालों की मज़दूरी के रूप में भारत में रह जाता था। वे दलाल जिनको उस समय बनिया या सरकार कहते थे, कम्पनी के द्वारा उसके लिए भारतीय

व्यापारिक वस्तुओं को खरीदने के लिए नियुक्त किये जाते थे, भारत के निवासी होते थे।

श्रीयुत सलिवन के लेख से यह प्रकट होता है कि व्यक्तिगत व्यापारी भारतीयों के साथ व्यापार करने में बहुत अधिक ईमानदारी से काम नहीं लेते थे।

"किन्तु फिर भी व्यक्तिगत व्यापारियों की अपेक्षा माननीय कम्पनी मालों की कीमत अधिक देती थी जो इस प्रकार समझा जा सकता है; कोई भी सार्वजनिक गुमाश्ता एक ही कीमत पर उतना अधिक माल नहीं पा सकता जितना कोई व्यक्तिगत व्यापारी; व्यक्तिगत व्यापारियों की खरीद किसी हद्द तक होगी। जब वह किसी निश्चित रकम से बढ़ना नहीं चाहता और अपनी जरूरत की चीजें अपनी शर्तों पर नहीं पा सकता तो वह खरीदना बन्द कर देगा। सार्वजनिक गुमाश्ते के लिए यह बात नहीं है देशी गुमाश्ता तथा उसके साथ २ रेजिडेण्ट जानता है कि उसे एक निश्चित मात्रा की चीजें खरीदने की आज्ञा मिली है जो एक निश्चित समय तक पूरी हो जानी चाहिए। वे अपनी कीमत बढ़ाये रखते हैं और अनेक अवसरों पर रेजिडेन्ट द्वारा अपनी शर्तें कबूल करवा लेते हैं।

अँग्रेजों के लाभ के लिए भारतीय कृषकों के हित का गला घोटा जाता था क्योंकि भारतीय उपज की कीमत को कम करने का अर्थ क्या हो सकता था श्रीयुत ऊड लिखते हैं:

"यदि भारतीय व्यापार को चलाने के प्रबन्ध में कोई परिवर्तन कर उसकी उपज की कीमत कम की जा सकती तो भारतीय कृषक

या वस्तु उत्पन्न करने वाले व्यक्तियो की बड़ी हानि होती। भारत में ऊँची दर व्यवसाय के लिए ऊपरी लाभ का काम देती है जिस प्रकार इंगलैण्ड में अनाज की ऊँची दर से लाभ होता था और यदि चीनी, नील या कपास की कीमत कम हो तो इसका नतीजा यह होगा कि उन्हें बोये जाने वाले खेत उजाड़ पड़ जायेगे अथवा उनमें ऐसी कोई दूसरी चीज पैदा की जावेगी जो विदेश में जाने के लिए उनमें पैदा की जाने वाली वस्तुओ की अपेक्षा अधिक कीमत लावे।"

श्रीयुत ऊड का उपर्युक्त कथन बिल्कुल सच था।

सन् १८१३ ई० में चार्टर कानून के पास होने के बाद इंगलैड के बेरोक व्यापार की नीति के कारण भारत का व्यापार किस प्रकार विध्वश हुआ वह नीचे लिखी बातो से प्रकट हो सकता है:

श्रीयुत मैकिलाप ने लिखा है:—

"सन् १८१४ ई० के पहले कपड़े के थान बहुत अधिक संख्या में बंगाल से विलायत को रवाना होते थे और बंगाल तथा बम्बई से विलायत को कपास भी काफी भेजी जाती थी।

"१८१४ के बाद विलायत से भारत को भेजे जाने वाले माल की बहुत अधिक वृद्धि हुई है, मिसाल के तौर पर, उस समय जस्ता, रूई का सूत और सूती थान आम तौर पर भारत से योरप को भेजे जाते थे किन्तु अब इंगलैंड से बहुत ही अधिक मात्रा में भारत को भेजे जाते हैं।"

श्रीयुत रिकार्ड्स ने लिखा था:—

"इंगलैंड से भारत को आने वाली मुख्य वस्तुएँ सूती थान, धागे, ऊनी माल और जस्ता आदि धातुएँ हैं, इंगलैंड में तैयार हुई चीजों की वृद्धि इस बीच में जो हुई हे उसका कुछ अनुमान प्रमाण रूप में दी हुई नीचे की बातों से हो सकता है। भारत में विलायत से सूती धागा पहिले पहल १८२१ में आया सन् १८२४ ई० में यह आयात एक लाख २० हजार पौंड हुई और सन् १८२८ ई० में यह ४० लाख पौंड तक पहुँच गई सन् १८१५ ई० में भारत में विलायती सफेद और छपे कपड़े का आयात लगभग ८ लाख गज था सन् १८३० ई० में यह लगभग ४ करोड़ ५० लाख गज था।"

चौथे प्रश्न के जो उत्तर मिले वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनसे प्रकट होता है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में अपने व्यापारिक धंधे को किस प्रकार करती थी; प्रश्न इस प्रकार था:

"भारत में सरकार के ब्यापार के साथ मेल का क्या व्यावहारिक परिणाम होता है क्या वास्तव में मुकाबले के व्यापारियों को ब्यापार में किसी अनुचित असुविधा में डालने के लिए सरकार की शक्ति काम में लाई गई है जहाँ मुकाबले के ब्यापारियो का सवाल है वहाँ क्या सरकार के रूप में सरकार की कार्यवाहियों में इस ब्यापार के होड़ से कोई अनुचित पक्षपात पैदा होने की बात पाई गई है यदि इन दोनों मामलों के मेल से जनता को वास्तव में कोई असुविधा मिलती हैं वे कम्पनी को मिलने वाली सुविधावों की अपेक्षा अधिक ध्यान देने योग्य है कि नहीं?"

इस प्रश्न के उत्तर में लिवरपूल ईस्ट इण्डिया कमेटी ने लिखा था :

"भारत में व्यापारिक कार्यवाहियों के करने में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा बर्ताव व तरीक़ा अँग्रेज व्यापारियों के हित का घातक और स्वयं उनके लिए भी हानिकर है।

"हमारा विश्वास है कि किसी भी देश में व्यापार के साथ में सरकार के संयोग का व्यावहारिक पारिणाम व्यापार के साधारण हित का अवश्य ही घातक होगा। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के साथ भी यही बात हुई है जिसको सिद्ध करने के लिए काफी सबूत हैं।

"यह बात प्रकट की गई है कि भारत के देशी व्यापारी उन उपजाई हुई वस्तुओं को जिन्हें कम्पनी खरीदा करती है व्यक्तिगत व्यापारियों के हाथ बेचने से भयभीत रहते हैं और उस समय तक बेचना कबूल नहीं करते जब तक कि वे पहले कम्पनी की जरूरतों और उसके व्यापारी दलालों की इच्छाओं को निश्चित रूप से जान नहीं लेते, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जहाँ एक ही बाजार में राज्य-कर व्यक्तिगत व्यापारियों की पूँजी के मुकाबले में खड़ा कर दिया जाता है वहाँ नतीजा व्यक्तिगत व्यापारियों के लिए जरूर ही असुविधा जनक होगा।"

श्रीयुत लारपेन्ट ने उयुॅक्त प्रश्न के उत्तर में लन्दन के व्यापारियों द्वारा भेजे हुए आवेदन पत्र को उद्धृत किया जिसमें लिखा था :

"जब तक कि बंगाल सरकार के कानून की १७९३ ई० की ३१ वीं दफा रद्द नहीं कर दी जाती तब तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी

को अपने व्यापारिक लाभ को बढ़ाने के लिए राजनीतिक अधिकार को उपयोग में लाने का अधिकार है।

"जब हम यह समझ लें कि यह न समझ लिया जाय कि भारत में सरकार के प्रति आदर की स्वाभाविक धारणा लोगों में कितनी दृढ़ है और उस देश के कच्चे माल या तैयार माल को प्राप्त करने का कौन सा तरीका है तब तक इस दफा का ठीक रूप, जो आगे के पैरा में दिया गया है, बहुत सख्त नहीं कहा जा सकता। जिस किसी व्यक्ति ने कम्पनी से पेशगी ली हो या उनके लोगों में बांटे हुए रुपयें से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता हो वह उनकी चाकरी से अलग नहीं हो सकता। वह दूसरो के लिए वा अपने लिए काम नहीं कर सकता। यदि वे अपने इकरार को पूरा न करें तो वे चौकीदारों की हिरासत में डाल दिये जाते हैं और उनके तैयार किये हुए या उपजाये हुए माल पर पहिले कम्पनी का कब्जा हो सकता है चाहे वे दूसरों के कर्जदार क्यों न हों।"

श्रीयुत रिकार्ड्स का उत्तर बहुत महत्वपूर्ण है। उसने लिखा है:

"सन् १८१३ ई० में प्रकाशित मेरी एक पुस्तिका में सूरत के व्यापारिक बोर्ड की डायरी से लिए हुए कुछ उदाहरण दिये हुए हैं जिससे निम्न-लिखित घटनायें सन् १७९६ और १८११ ई० के सालों के बीच कम्पनी के व्यापारिक नौकरों की कार्रवाई के मामूली तरीके के रूप में पूरी तरह से प्रमाणित पाई जा सकती हैं; यह कि सूरत में व्यापार के लिए रुपये फैलाने का काम बहुत अधिक सख्त और अत्याचारपूर्ण तरीकों से होता था; यह कि जुलाहे अपने स्वार्थों

और वास्तव में अपनी इच्छा के विरुद्ध इकरार करने और कम्पनी के लिए काम करने के लिए मजबूर किए जाते थे, अनेक दशाओं मे वे काम करने के लिए इस तरह मजबूर होने के बजाय जुर्माने की भारी रकम देना पसंद करते थे; यह कि कम्पनी उनके अच्छे और बढ़िया माल के लिए जो कीमत देती उससे अधिक कीमत उन्हें अपने घटिया माल के लिए हालैन्ड, पुर्तगाल, फ्रांस और अरब के व्यापारियों से मिल सकता था; यह कि इसके कारण कम्पनी के व्यापारिक प्रतिनिधियों और विदेशी कारखानों के गुमाश्तों में निरंतर झगड़ा बखेड़ा मचा करता था और जुलाहे माल को छिपाकर निकालते जिसकी पकड़ होने पर उन्हें बहुत अधिक सख्त सजा भोगनी पड़ती; यह कि प्रतिनिधि (रेजिडेन्ट) का उद्देश्य इसी के बतलाये अनुसार कपड़े के थानों के घटाये हुए या निश्चित दर के पूर्ण व्यापार के कम्पनी के एक मात्र एकाधिकार की स्थापना और रक्षा करता था जिसे कम्पनी इतने अधिक जोश के साथ ध्यान में रक्खी हुई थी; यह कि इस उद्देश्य के पूरा करने में जोर और सजा का इस हद तक इस्तेमाल किया जाता था कि बहुत से जुलाहे इस रोजगार को छोड़ने के लिए मजबूर होते थे; किन्तु इसे भी रोकने के लिए वे न तो सैनिक की जगह भर्ती हो सकते थे और अंग्रेज अधिकारी की आज्ञा बिना कभी एक बार भी शहर के फाटक के बाहर न निकल सकते थे; यह कि जुलाहे जब तक नवाब की प्रजा थे तो उन जुलाहों को गुस्ताखी के व्यवहार का बहाना कर सजा देने और तबाह करने

के लिए नवाब के पास बार २ दरख्वास्तें भेजी जाती थीं और जब उनके साथ सख्ती का व्यवहार होता था तो इस बात की इच्छा की जाती थी कि नवाब, जो ब्रिटिश सरकार के हाथ में कठपुतली की तरह था, यह जाहिर करे कि यह व्यवहार उसकी खास सरकार अपनी इच्छा से कर रही है और उसका कम्पनी या उसके स्वार्थों से कोई संबंध नहीं है अन्यथा उससे कम्पनी के नौकरों के विरुद्ध शिकायत या दुर्भावना उत्पन्न होने का मौका मिलता; यह कि कंपनी के लिए सस्ते दर पर कपड़े के थानों के व्यापार पर एकाधिकार रखने के लिए रेजिडेन्ट का यह आम कायदा था कि वह जुलाहों को सदा कम्पनी की ओर से कुछ अगाऊ दिये रहता जिससे वे दूसरे व्यापारियों के काम में न लग सकें, साथ ही आसपास के देशी राजाओं से सिफ़ारिश की जाती कि उनके आधीन जिलों में भी यह क्रम चल सके। जुलाहों को माल तैयार करने की आज्ञा दी जा सके तथा कम्पनी के नौकरों और दलालों को अन्य सब लोगों की अपेक्षा तरजीह दी जा सके और किसी भी दशा में कपड़े के थान दूसरे व्यक्तियों के हाथ न बेचे जाँय; यह कि सूरत के ब्रिटिश सरकार के हाथ में आने के बाद ही अदालत के अधिकार को इसी तरह की निरंकुश और अत्याचारपूर्ण कार्यवाहियों को जारी करने के लिए प्रयुक्त किया गया।

"कम्पनी सूरत में कपड़े के थान का व्यापार जब तक करती रही उसके व्यापारिक नौकरों का आम तरीका यही रहा और दूसरी अँगरेजी कोठियों के बर्ताव का नमूना इसी से ही समझा जा सकता है।

राजकीय शक्ति और व्यापार को एक में मिलाने का स्वाभाविक परि-णाम इसके बजाय कुछ और नहीं हो सकता।

"मद्रास सरकार को लार्ड वेलेजली द्वारा लिखे गये १९ जुलाई सन् १८१४ ई० के प्रसिद्ध पत्र में निरंकुश व्यवहार के ऐसे ही तरीकों का व्योरा दिया गया है जो प्रेसिडेन्सी के आधीन व्यापारिक कोठियों का आम तरीका था। यदि इस पत्र का हवाला लिया जाय तो सर्वोच्च सरकारी अधिकारी के कथनानुसार ज्ञात होगा कि सम्राट की शक्ति किस प्रकार निरंकुशता-पूर्वक आमतौर से अपने खास व्यापारिक मामलों को बढ़ाने और उसको तरजीह देने के लिए ही नहीं किया जाता था बल्कि व्यक्तिगत व्यापार के मार्ग में रोड़े अटकाने के लिए किया जाता था जो देश के अधिक वास्तविक और नियमित व्यापा-रियों के उद्योगों और स्वार्थों के लिए घातक था।

"जुलाई सन् १८३१ ई० में गवाही के समय जो बातें मैंने कही थीं उससे अधिक स्पष्ट अपने विचार इस सम्बन्ध में नहीं प्रगट कर सकता व्यापारिक रेज़िडेन्ट, जिसे कम्पनी के मुनाफे को बढ़ाने की चिन्ता होती है अथवा कम्पनी के काम को पूरा करने में निराशा मालूम होने पर हानि का भय होता है, स्वभावतः अपने पक्ष में उन सब सुविधाओं को प्राप्त करना चाहता है जो शक्ति द्वारा प्राप्त होती है। इसके लिए निरंकुश और अत्याचार-पूर्ण कार्यवाहियों को प्रोत्साहन दिया जाता है और उनके सम्बन्ध में आँख मूँद ली जाती है। बाद में इन सब कारनामों को सरकारी काम को उत्साह के साथ सम्पादित किया हुआ मान लिया जाता है और जहाँ कहीं भी राजशक्ति और

व्यापारिक कार्यों का एक ही हाथ में संयोग होगा वहाँ सदा यही परिणाम होगा।

"मार्च सन् १८३१ में श्री सॉंडर द्वारा दी हुई गवाही में यही भावना बतलाई गई है और बंगाल के उन जिलों में, जहाँ कम्पनी के रेशम के कारखाने स्थापित हैं १८२९ ई० तक अत्यधिक निरंकुश और अत्याचार-पूर्ण कार्यवाइयाँ की गई बतलायी गयी हैं। श्री सॉंडर की गवाही बहुत महत्वपूर्ण है इसमें बहुत साफ तौर से बताया गया है ऊपर बताये अनुसार सूरत के दुर्व्यवहार की तरह ही कार्रवाइयाँ बङ्गाल के रेशम के कारखानों में अत्यधिक दिनों तक होती रहीं बल्कि कम्पनी की दस्तन्दाजी के कारण १८१५ और १८२१ के बीच ४० फी सदी से भी कीमतें चढ़ गईं; और इस ऊँची कीमत की चढ़ी हुई रहने पर, जिससे इंगलैण्ड की बिक्री में बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी, सन् १८२७ ई० में इसी तरह की एक दूसरी निरंकुश कार्रवाई चीज़ों की असली लागत कम करने के लिए की गई और उन चीज़ों के बेचने वालों के हित या इच्छा को जानने की तनिक भी कोशिश किये बिना ही उनकी कीमत खरीदारों द्वारा ही तय कर दिये जाने की आज्ञा निकाल दी गई... ... ... जब शासक व्यापार करता है वा व्यापारी को शक्ति को उपयोग करने दिया जाता है तो प्रत्येक अवस्था में शक्ति का निश्चय रूप से दुरुपयोग होता है और वह अत्यधिक बुरे मार्गों में प्रयुक्त होती है, उस शक्ति का उपयोग करने वाला चाहे जो हो।

"जब मैं हिन्दुस्तान में था तो देशी राजाओं के साथ अनेक संधियाँ थीं जिनमें उन स्थानों में, जहाँ कम्पनी के किसी तरह व्यापार का कोई मामला होता या उठने वाला होता वहाँ के लिए कंपनी को उन मामलों में एकाधिकार वा कम्पनी के गुमाश्तों को अन्य सभी व्यक्तिगत व्यापारियों के सामने तरजीह दिये जाने की बात जोड़ दी गई होती। बंगाल के इतिहास में १७६५ के पहिले और बाद में बंगाल के नवाब के साथ किये हुए सुलहनामों के आधार पर की हुई बहुत ही अधिक कार्रवाइयाँ पाई जाती हैं ... ... मेरा विश्वास है कि आज वे सिद्धान्त चालू हैं जिनके कुछ उल्लेखनीय उदाहरण मालवा के राजाओं के साथ संधियों और मालवा के अफीम के संबन्ध में पिछले दिनों की कार्रवाइयों के इतिहास में मिल सकते हैं।"

अब हम केवल एक प्रश्न का यहाँ उल्लेख करेंगे जो ग्यारहवाँ था।

"क्या भारतीय व्यापार के हित को बढ़ाने वाले, जैसे भारत के निर्यात होने वाले पदार्थों की वृद्धि या उन्नति करने वाले किन्हीं उपायों को बताया जा सकता है जिनकी जिक्र पिछले प्रश्नों में नहीं हो चुकी है?"

यह सोचा जा सकता है कि इस प्रश्न का अभिप्राय भारत के उद्योग-धंधों के साथ न्याय करना था। किन्तु इस प्रश्न के बनाने वालों का कभी इस प्रकार का मतलब नहीं था। उनका एक मात्र का अभिप्राय था कि भारत वालों की हानि कर विलायत निवासियों को किस

प्रकार लाभ पहुंचाया जाय। इस प्रश्न के दिये हुए अधिकांश उत्तरों में इस बात का ध्यान दिया गया है; हम यहाँ पर पहिले मुख्य व्यापार मंडलों के उत्तर देंगे जो भारत के साथ व्यापार करते थे।

श्रीयुत हेंनरी गौगर एक पुस्तक में लिखते हैं:

"कच्चे रेशम की उत्पत्ति कराने में ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने व्यक्तिगत व्यापारियों के साथ होड़ की। उन्होंने रेशम पैदा करने वाले भिन्न २ जिलों के भाग में अपने व्यापारिक गुमाश्ते (रेजिडेन्ट) कायम कर रखे थे जिनका मेहनताना कम्पनी को दिलाये रेशम की तादाद पर निर्भर करता था। कम्पनी ने इन गुमाश्तों को रेशम की कीमत पर दलाली ले लेने की आज्ञा दे रक्खा था।

"दोनों पक्षों द्वारा बर्ता जाने वाला तरीका यह था; हर फसल के पहिले दो तरह के लोगों को पेशगी रकम दे दी जाती थी; पहिले वे किसान जो रेशम का कोया जुटाते थे; दूसरे बहुत अधिक संख्या के वे रेशम कातने वाले लोग जो बहुत अधिक तादाद में आसपास के गावों में बसे हुए होते थे। पहिली तरह के लोगों से कच्चा रेशम लिया जाता था और दूसरी तरह के लोगों से उसे कतवाया जाता था। पेशगी की इन रकमों को बयाना या उसको बाँटने वाले व्यक्ति के लिए ही काम करने के इकरारनामे की तरह माना जाता था।

अपने मालिक के लिए रेजिडेन्ट रेशम जितनी अधिक मात्रा में जुटाता उसे उतना ही अधिक मेहनताना मिलता। ऐसी हालतों में स्वभावितः गुमाश्तों और व्यक्तिगत व्यापारियों के बीच में द्वेषभावना उत्पन्न होती थी, क्योंकि उनके हितों में संघर्ष था, किन्तु इस संघर्ष में

बराबरी नहीं थी, इनमें एक के हाथ में तो निरंकुश शक्ति थी और दूसरे के हाथ में कुछ नहीं था। रोज घटित होने वाली घटना का हम एक उदाहरण देते हैं:

"एक भारतीय एक मौसिम में अपने उत्पन्न किये हुए कोए को बेचने की इच्छा से मुझसे पेशगी लेता है; रेशम कातने वाले गाँव के लोग भी ऐसा ही करते हैं; इस इकरार के होने के बाद रेजिडेन्ट के दो नौकर गाँव को भेजे जाते हैं जिनमें एक के हाथ में रुपए का थैला होता है और दूसरे के हाथ में एक कापी होती है जिसमें वह रुपया लेने वालों का नाम लिखता जाता है; एक व्यक्ति जिसे रुपया दिया जा रहा है विरोध में यह बात कहता है कि उसने मेरे साथ पहले इकरार कर लिया है; यदि वह रुपया लेना न मंजूर करता है तो एक रुपया उसके घर में फेंक दिया जाता है और उसका नाम उस गवाह के सामने लिख दिया जाता है जो रुपए का थैला लिए रहता है और इतना ही काफी है; इस धाँधली की कार्रवाई के आधार पर रेजिडेन्ट अपने अधिकार से, जो उसे प्राप्त होता है, मेरी जायदाद और मेरे मजदूरों को मेरे अपने दरवाजे पर से भी जबरदस्ती छीन लेता हैं।

"अत्याचारों का यहीं पर अंत नहीं होता; मुझसे इस प्रकार जो रुपया धाँधली-पूर्वक छीना जा चुका हैं उसके वापस करने के लिए मैं जब अदालत में उस आदमी पर नालिश करता हूँ तो मेरे पक्ष में डिगरी देने के पहिले न्यायाधीश को मजबूरन व्यापारिक रेजिडेन्ट से इस बात का निश्चय कर लेना पड़ता कि कर्जदार पर ईस्ट इन्डिया कम्पनी का कर्ज तो किसी प्रकार नहीं; यदि वह कम्पनी का कर्जदार होता

तो उस पर रेजिडेन्ट को पहिले डिगरी दे दी जाती और मेरा रुपया डूब जाता।

"रेजीडेन्ट के हाथ में दूसरा हथियार यह था कि वह प्रत्येक फसल के अन्त में किसानों को दी जाने वाली रकमों को तय करता; ईस्ट-इन्डिया कम्पनी के दर से ही व्यक्तिगत व्यापारी की दर निश्चित होती; दर जितनी ही ऊँची होती रेजीडेन्ट की दलाली उतनी ही अधिक होती, रकम उसकी अपनी नहीं लगती, उसका मालिक भारी पूँजी वाला था।"

मैंनचेस्टर के व्यापार-मण्डल और ईस्ट इन्डिया कमेटी ने लिखा था :—

"भारत के निर्यात और उपज की बृद्धि और उन्नति से निःसन्देह भारत का अधिक हित होगा और केवल भारत का ही नहीं बल्कि इस देश का भी होगा, भारतीय कपास की किस्म में तरक्की करना इङ्गलैण्ड के सूती व्यापारियों के फायदे के लिए बहुत ही अधिक जरूरी है, अतएव इस मामले में भारत जिस हद तक समर्थ हो उसे जल्द से जल्द उन्नति करने का अवसर दिया जाना चाहिए, किन्तु हमें कोई खास राय नहीं देनी है जब तक कि बृटिश प्रजा को जमीन दखल करने का अधिकार न मिल रहा हो।"

व्यापार-मण्डल के उपर्युक्त उत्तर पर हमें कोई आलोचना नहीं करनी है। व्यापार-मण्डल ने ऊपर की जो सिफारिशें कीं, उस समय अपने ध्यान में जो अपने मतलब की बातें रक्खीं, वे साफ जाहिर हैं।

हल कमेटी ने लिखा था :—

"जब से कम्पनी के डाइरेक्टर भारत में हम लोगों के विशाल राज्य के शासक हुए हैं सड़कों द्वारा देश के भीतरी भाग में आने-जाने की सुविधायें नहीं उत्पन्न हुई हैं, और न वहाँ की जमीन व भाँति-भाँति की उपजों में कोई तरक्की की गई है ...... यदि कम्पनी अपना काम शासन तक ही रक्खे और व्यापारियों से होड़ या एकाधिकार के संकीर्ण सिद्धान्त से दूर रहे तो भूमण्डल के इस विस्तृत भाग और उसके निवासियों की अवस्था कितनी भिन्न हो जायगी ! इस तरह के परिवर्तन से सुविधायें (यदि गोरों को भारत में उपनिवेश स्थापित करने की आज्ञा दे दी जाय, हम लोगों और भारत-निवासियों के लिए असीम होंगी; इससे हम लोगों को पूँजी लगाने का बड़ा सुन्दर अवसर मिलेगा, व्यापार और व्यवसाय के फैलाने के लिए तथा जहाजों को काम में लाने के असीम साधन प्राप्त होंगे। इन मामलों की सुविधायें इस कारण बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं कि इनमें किये व्यापार विदेशी संघर्ष और नियंत्रण से मुक्त होंगे, विदेश में जाकर बसने वाले गोरों को कनाडा, संयुक्त देश व न्यूहालैण्ड से भी अधिक इसके द्वारा प्रोत्साहन मिलेगा और इससे हमारी राष्ट्रीय और व्यक्तिगत समृद्धि स्थायी रूप से और बहुत अधिक होगी। भारतीयों के लिए इस प्रबन्ध के परिवर्तन से अँग्रेजों के साथ अधिक संपर्क होने के कारण अधिक ज्ञानवान और सभ्य बनने का अवसर मिलेगा तथा उनकी भयानक रूढ़ियाँ दूर होंगी और उनकी उन्नति, कल्याण और सुख का मार्ग खुलेगा।".

खूब ! भारतीय अपने उद्योग-धन्धों के परिणाम-स्वरूप दरिद्रता के शिकार होकर अकाल, प्लेग और अन्य संघातक बीमारियों द्वारा

पृथ्वी से लुप्त होकर सभ्य बनेंगे। बहुत से व्यक्तियों ने इस प्रश्न का उत्तर देते समय माँग पेश की कि उनके देश-वासियों को भारत में बसने के लिए प्रोत्साहन दिया जाय जिसके बिना भारतीय व्यापार के हितों की वृद्धि उनकी समझ में नहीं हो सकती थी।

श्रीयुत ऊड ने भारत की उपज के ढोने की सुविधायें उत्पन्न करने के लिए भारत में सड़कों और नहरों के बनाये जाने की सिफारिश की थी; उसने लिखा था:

"प्रेसीडेन्सी से देश के भीतरी भागों में आने-जाने की सुविधायें बनाने के सम्बन्ध में बहुत कम उद्योग किया गया है और सड़कें उससे भी अधिक बुरी हालत में छोड़ दी गई हैं जिसमें वे मुगलों के शासन के समय थीं। उनकी सड़कों और पुलों के अवशेष देश भर में देखे जा सकते हैं और यद्यपि हम लोग देश को इतने दिनों से अपने अधिकार में रक्खे हुए हैं तथापि कलकत्ते से तीस मील के अंदर की सड़कें भी बरसात में गाड़ियों के चलने के योग्य नहीं हैं।"

श्रीयुत ऊड यह बात भूल गये कि अंग्रेजों के लिए भारत एक दूध देने वाली गाय की तरह जान पड़ता है जिसे किसी प्रकार का चारा दिये बिना बराबर दुहते जाना उनको अपना कर्तव्य जान पड़ता है, श्रीयुत ऊड को यह बात नहीं मालूम थी कि भारतीय अँग्रेजी सरकार उन दिनों यह अपना कर्तव्य नहीं समझती थी कि भारत में यहाँ के निवासियों के लाभ के लिए सड़कें और नहरें बनवावे, इस प्रकार श्रीयुत एन० बी० एडमान्सटन, जो भारत में एक बहुत ऊँचे पद पर अफसर थे, पार्ल्यामेन्ट की कमेटी के सामने १६ अप्रैल सन्

१८३२ ई० को गवाह के रूप में उपस्थित हुए थे। उनसे पूछा गया था :

"चूंकि हम लोगों ने भारत से बहुत अधिक कर लगभग २ करोड़ पौंड वार्षिक वसूल किया है क्या आप भारत में सार्वजनिक कार्यों, जैसे सिंचाई, के साधन सड़कें, पुल व अन्य सार्वजनिक निर्माण की गई वस्तुओं के रूप में बड़ी उन्नति के कामों का नाम ले सकते है जिससे हम लोगों के साम्राज्य से प्रात लाभ वहाँ प्रगट हो सकता हो?"

इसके उत्तर में श्रीयुत एडमान्सटन ने कहा था:

"सर्वजनिक कार्यों से नहीं; यह काम साधारणतया देशी जमीदारों की बुद्धि और परिश्रम पर छोड़ दिया गया था। इस तरह का केवल एक ही काम हुआ है जो अधिक महत्व का है। यह उन पुरानी नहरों को फिर से जारी करना है जो भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में पुराने समय में जमुना से निकाली गई थीं जो ऊसर भूमि में बहुत अधिक दूरी तक ले जाई गई हैं और उनके द्वारा भूमिकर में बहुत अधिक बृद्धि हुई है।"

श्रीयुत रिकार्ड्स ने इंगलैंड में भारत के आयात-पर लगी हुई भारी चुंगी और ज्यादती को दिखलाते हुए लिखा था :

"विलायत में भारत से भेजी गई वस्तुओं पर लगी चुँगी की दर के मुकाबले बिलायती माल भारत में चुँगी के बिना ही भेजे जाना (सूती माल पर सिर्फ २॥ प्रतिशत की चुँगी लगती थी) इस प्रश्न का बहुत अधिक आवश्यक विषय है। अंग्रेज, स्काटलैंड; निवासी और आयर

लैंड-निवासी गोरों की तरह कम्पनी के शासनाधीन भारतीय भी ब्रिटिश सरकार की प्रजा हैं। एक जाति का पक्ष करना और दूसरी पर अन्याय कर घृणित भेद करना, जब कि सभी एक ही साम्राज्य की प्रजा हों, न्याय के नियमों के अनुकूल नहीं कहा जा सकता। जहाँ कि विलायती आयात-माल के साथ भारत में इतना अत्यधिक पक्षपात किया जाता है वहाँ मेरी समझ में भारतीय बृटिश प्रजा अपने देश के माल के विलायत में भेजे जाने पर उस पर बहुत अधिक चुँगी लगने की बात पर बहुत अधिक क्षोभ का अनुभव करती है।

"देशी और विलायती माल बृटिश प्रजा की ही सम्पत्ति है किन्तु भारत में आये विलायती माल पर लगने वाली चुँगी के मुकाबले विलायत में मँगाये गये भारतीय माल पर लगी चुँगी के सिद्धान्त में इतनी असमानता है कि भारत में आये विलायनी माल की चुँगी माफ होती है और विलायत में मँगाये गये भारतीय माल पर बहुत ही अधिक चुँगी लगाई जाती है। बहुत सी साधारण उपयोग की वस्तुओं पर सौ फी सदी से भी अधिक चुँगी लगती है, यह दर सौ फी सदी से अधिक छः सौ फी सदी तक पहुँच जाती है, यहाँ तक कि एक चीज पर तीन हजार फी सदी चुँगी लगती है।

"किन्तु देशी और विदेशी दोनों तरह के भारतीय व्यापार के विस्तार में सबसे अधिक बाधा पहुँचाने वाली वस्तु भूमि-कर है, जो उपज के अर्द्धांश के बराबर ली जाती है। इसके कारण जनता के अधिकाँश भाग की शक्ति जर्जर होकर उन्हें असह्य दरिद्रता का शिकार बना देती है।"

५—भारत में अंग्रेज़ों के विशेष अधिकार

अँग्रेज दार्शनिक हरबर्ट स्पेन्सर ने जापान के बैरन कनेको को निम्नलिखित पत्र लिखा था :

"अन्य जिन बातों के बारे में अपने पूछा है मैं पहले साधारतया यह उत्तर देना चाहता हूँ कि मेरी समझ में जापान की नीति योरोपीय और अमेरिका वासियों को दूर ही रखने की होनी चाहिए। अधिक शक्तिशाली जाति के सम्मुख आपकी स्थिति खतरे में रहेगी। आप लोगों को अपने देश में विदेशियों का कदम न पड़ने देने के लिए यथासम्भव प्रत्येक उपाय काम में लाना चाहिये।

"मुझे जान पड़ता है कि आप सुविधा के साथ केवल इतने ही रूप में व्यवहार रख सकते हैं जो वस्तुओं के विनिमय—भौतिक और बौद्धिक वस्तुओं के आयात-निर्यात के लिये अत्यावश्यक हो। दूसरी जाति के लोगों को केवल उतने ही अधिकार दिये जा[illegible] चाहिए जो इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए बहुत ही आवश्य[illegible] आप योरप और अमेरिका के देशों के साथ सन्धि के प[illegible] प्रस्ताव अपने सारे साम्राज्य को विदेशियों और वि[illegible] खोल देने के लिए स्पष्टतया कर रहे हैं। मुझे द[illegible] घातक नीति है। इनका क्या परिणाम होगा यह चाहते हों तो भारत के इतिहास का अध्ययन करें

उपर्युक्त उद्धरण के सम्बन्ध में ही नवम्बर १९२१ के 'माडर्न रिव्यू' नामक अंग्रेजी मासिक में लिखा था :

"हरबर्ट स्पेन्सर द्वारा जापानी महानुभाव को यह बहुत ही विचार-पूर्वक सम्मति दी गई थी कि जापान में योरपीय राष्ट्रों को कोई व्यापारिक या औद्योगिक सुविधाएँ नहीं दी जानी चाहिए। जिन देशों द्वारा उन्हें सुविधाएँ दी जाती हैं उन सुविधाओं के देने के फलस्वरूप वे दखल कर ली जाती हैं अथवा आधुनिक योरप-वासियों के शब्दानुसार विजित कर ली जाती हैं। रियायतें देने वाले देश का सत्यानाश और पराजय होती है। एक अमेरिका के लेखक ने ठीक ही लिखा है 'दूसरे राज्यों के अपहरण करने के सबसे अधिक शिष्ट ढंग ऋण और रेलवे द्वारा हैं। कमजोर राष्ट्र कर्ज लेता है और सूद चुकता नहीं हो पाता। कर्जदार अपने कर्जे का सूद वसूल करने के लिए चुंगी-घरों पर कब्जा कर लेता है और चुंगी-घर के कब्जे से नगर, फिर उसके बाद देश पर कब्जा जमा लेना बहुत आसान होता है। रेल द्वारा राज्यापहरण का यह तरीका है कि पिछड़ा हुआ राष्ट्र किसी अधिक शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा रेलवे अपने में बिछवाना मंजूर करता है। मंचूरिया के आरपार ब्लाडी- पोर्ट आर्थर तक रूसी रेलें इसी तरह की थीं। रेलवे कार्य्य-कर्ताओं की रक्षा करने की आवश्यकता होती रा रक्षा और फौज में कितना अन्तर होता है यह ीं जा सका है। रूसी सैनिक बहुत अधिक संख्या ट हुये और कुछ ही वर्षों में सारे संसार ने उसे

एक रूसी प्रान्त स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार मिस्र भी अंग्रेजी साम्राज्य का एक भाग मान लिया गया था। इसके राजसिंहासन पर अधिकार बताने वाले व्यक्तियों की परवाह अँग्रेजों को नहीं हुई। सन् १९०४ के युद्ध से जापानियों ने मंचूरिया की रेलवे का कुछ भाग रूसियों से बलपूर्वक छीन लिया। सुविधा प्राप्त करने वाले इन राष्ट्रों के परिवर्तन में चीन की कोई बात ही पूछने की जरूरत नहीं थी। सुविधा प्राप्त करने वाले ये राष्ट्र वास्तव में विजयीरूप में थे'*

भारतीय व्यापार तथा उद्योग-धन्धों की बरबादी तथा राजनीतिक पतन उस समय से कहा' जा सकता है, जब कि मुगल सम्राट ने एक एशियाई सम्राट की स्वाभाविक उदारता और विशाल हृदयता के साथ विदेशी अँग्रेज जाति के ईसाई व्यापारियों को, जो भारत के साथ व्यापार करते थे, ऐसी शर्तें मंजूर की थीं जिन्हें कोई भी आधुनिक ईसाई शासक किसी भी ईसाई वा दूसरी जाति के लोगों को कभी देने का विचार नहीं कर सकता। विदेशी व्यापारियों के छद्म वेश में भारत के विजय के लिए षड़यन्त्र कर रहे थे। दुर्भाग्य वश तिकड़मी और फरेबी विदेशियों का षड़यन्त्र प्रगट नहीं हो सका। यही नहीं बल्कि भारत के सरल हृदय निवासियों को उस विषय में संदेह भी नहीं हुआ। विदेशी भारतीयों को फँसाने के लिए जो उनके चारों ओर जाल बिछा रहे थे; उसका यदि भारतीयों को समय रहते पता

---

* औद्योगिक और व्यापारिक भूगोल (इन्डस्ट्रियल एंड कमर्शल ज्याग्रफी, जे रसेल स्मिथ कृत, न्यूयार्क, हेनरी होल्ट एंड कम्पनी १९१३

लग जाता या संदेह भी होता तो वे जाल से बच सकते या नहीं इस प्रश्न पर यहाँ विचार करना अनावश्यक है। किन्तु अंग्रेजों ने जब से भारत में अपना प्रभुत्व जमाया यह उनकी सतत नीति रही है कि भारत के देशी व्यापार और उद्योग को प्रोत्साहन न दें और उन्नत होने न दें तथा भारतीयों को इस रूप में चित्रित करते रहें कि उनमें व्यापार की क्षमता और शक्ति का अभाव होता है, वे उद्योग-धन्धों का संगठन करने में असमर्थ होते हैं, वे अपना धन गाड़ रखते हैं और उसे नये उद्योग-धन्धों को चलाने और खड़े करने में नहीं लगाते। भारतीयों के विरुद्ध इन सब दोषारोपणों को इस युक्ति से समझा जा सकता है कि मनुष्य उस व्यक्ति से घृणा करने लगता है जिसके साथ वह उपकार किए रहता है।

जब भारत को स्वराज्य प्राप्त हो चुका रहेगा तब भी विदेशियों की अधिकृत पूंजी से खुली रेलवे, व्यवसाय और अन्य व्यापारिक धन्धे भारत को सफलतापूर्वक आर्थिक आधीनता में रखने में समर्थ होंगे, जिससे फिर राजनीतिक आधीनता उत्पन्न हो सकती है।"

अँग्रेज व्यापारियों को विशेष अधिकार होने से ही सिराजुद्दौला के विरुद्ध षडयन्त्र हुआ और प्लासी युद्ध मचा। उंगली पकड़ने का अवसर मिलने पर मनुष्य हाथ पकड़ लेता है। अँग्रेज व्यवसायी जो कुछ पाते उससे कभी सन्तुष्ट न होते और सदा अधिक से अधिक पाने की माँग बनाये रखते। इसी कारण उन्होंने मीरकासिम के विरुद्ध षडयन्त्र कर उसे गद्दी से उतारा। उन्होंने भेड़ियों और गिद्धों के समुदाय की भाँति व्यवहार किया।

हरबर्ट स्पेन्सर ने लिखा है :

"पिछली १८वीं शताब्दी के अधगोरों ने, जिन्हें बर्क ने स्वार्थ की मूर्ति बतलाया था, अपना रूप पीरू और मैक्सिको के अपने आत-तायी बन्धुओं से कुछ ही कम क्रूर दिखलाया। उनके कारनामे कितने काले रहे होंगे, इसका हम अनुमान कर सकते हैं जब कि कम्पनी के डायरेक्टरो ने इसे स्वीकार किया है, कि भारत के देशी व्यापार में अर्जित असीम सम्पत्ति ऐसे अत्यधिक अत्याचार और निर्दयता-पूर्ण व्यवहार से प्राप्त की गई है, कि उनका जोड़ किसी भी देश व युग में नहीं मिल सकता। वेन्सीटार्ट द्वारा वर्णित समाज की विकट अवस्था की कल्पना कीजिये जो कि बतलाता है कि अँग्रेज भारतीयों को कोड़े लगा कर और हिरासत में रख कर अपनी इच्छानुसार मन-मानी दर पर खरीदने और बेंचने पर विवश करते थे।"

(सोशल स्टेटिक्स, पहला संस्करण, पृष्ठ ३६७)

ईस्ट इन्डिया कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार भारतीय व्यवसाय के लिए घातक सिद्ध हुए। विलियम बोल्ट्स 'भारतीय मामलों पर विचार' (कन्सिडरेशन्स आन इन्डियन अफेयर्स) नाम की पुस्तक में लिखते हैं कि ईस्ट इन्डिया कम्पनी के बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी लेने का कारण 'जिन व्यक्तियों ने सरकार के इस प्रबन्ध की योजना की थी तथा प्रचलित किया था, उन को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए देश के व्यापार और जीवन के लिए साधारण आवश्यकताओं को भी एकाधिकार स्थापित करने में समर्थ बनाना था जो समस्त

मानवजाति के जन्म-सिद्ध अधिकारों को पद-दलित करने वाला था जो आज तक भी किसी सरकार के इतिहास में बेजोड़ है।'

गवर्नर की कौंसिल की सेलेक्ट कमेटी ने १० अगस्त १७६५ ई० को नमक, सुपारी और तम्बाकू के व्यापार में एकाधिकार स्थापित करना निश्चय किया। इसकी घोषणा जनता में इस प्रकार की गयी :

विज्ञापन

"माननीय संचालक मण्डल (बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स) ने नमक, सुपारी और तम्बाकू के देशी व्यापार को महदूद करने के लिए विशेष आज्ञा निकालना उचित समझा है। उस आज्ञा के अनुसार यह व्यापार अब एक सरकारी समिति के हाथ में होगा जो इस कार्य के लिए नियुक्त होगी और कम्पनी तथा नवाब से प्राप्त अधिकार द्वारा इस समिति में इन चीज़ों के व्यापार का पूर्ण अधिकार निहित होगा। इस कारण माननीय कम्पनी की सरकार के आश्रित सब तरह के व्यक्तियों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नमक, सुपारी और तम्बाकू के व्यापार में आज से भाग लेने की सख्त मनाही की जाती है अर्थात वे व्यापार समिति के लिए इन चीज़ों की खरीद या बिक्री के लिए ठेकेदार होने के अतिरिक्त इन चीज़ों के नये कारबार में भाग नहीं ले सकते।"

बोल्ट्स लिखता है कि :

"नवाब का नाम लेने का ढोंग रचना सुविधाजनक समझा गया था जैसा कि दोहरा प्रबन्ध के उन दिनों के सभी काले कारनामों में

होता था। पाठकों को कम्पनी की कार्यवाही और उपर्युक्त अँग्रेजी विज्ञापन से यह अनुभव हुआ होगा कि इस नवाब को, जिसे यदि किसी प्रकार नवाब कहा जा सके, उस समिति में भाग लेने वाला बतलाया गया है। इस प्रकार अपनी उस प्रजा, देश की गरीब जनता की बरबादी के लिये उनको सहमत किया गया है जो इसमें नवाब के शामिल होने के कारण इस सम्बन्ध में अपने दुःख को दूर कराने की आशा भी नहीं कर सकती।"

नीचे मुचलके का एक नमूना दिया जा रहा है जो कम्पनी द्वार उन जमींदारो से ली जाती थी जिनके पास नवाब के नाम परवाना भेजा जाता था।

"............मैं सम्बत ११७३ (बंगला सम्बत) में तैय्यार होने वाले नमक का किसी दूसरे व्यक्ति के साथ किसी भी तरह व्यापार न करूँगा और उनकी (कम्पनी) आज्ञा के बिना नमक का एक कण भी न बेचूंगा और न किसी प्रकार हटाऊँगा और जो कुछ भी नमक मेरी जमीदारी के हद के भीतर बनेना और सभी नमक ईमानदारी के साथ तुरन्त उक्त समिति के हवाले कर दूँगा। मैं अपने हाथ से लिखे इकरारनामे के मुताबिक रकम पाऊँगा; और तैय्यार हुए नमक की पूरी और सब मिकदार दे दूँगा। कंपनी की आज्ञा के बिना नमक के एक टुकड़े को भी किसी दूसरी जगह न ले जाऊँगा और न किसी दूसरे आदमी के हाथ बेचूँगा। यदि कोई ऐसी बात मेरे खिलाफ साबित हो जाय तो उक्त कंपनी के सरकार (दलाल या प्रतिनिधि) को प्रति मन पांच रुपये के हिसाब से जुर्माना दूँगा।"

इसके बाद सरकारी समिति ने देश भर में सभी मुख्य बाजारों और व्यापारिक केन्द्रों में गोरे गुमाश्ते नियुक्त कर व्यापार प्रारम्भ किया।

बोल्ट्स ने इस व्यापारिक एकाधिकार के वास्तविक मुनाफे का ठीक अंदाजा लगाया था और नीचे लिखे नतीजों पर पहुँचा था :

"हम जिस मद्द की बात यहाँ कर रहे हैं उसके जानकार सभी लोगों द्वारा बिल्कुल ठीक बताये जाने योग्य हमारे इस तखमीने, से यह जाहिर है कि उन चीजों के अकेले व्यापारिक एकाधिकार से जो जीवन की साधारण आवश्यकतायें समझी जाती हैं केवल साठ व्यक्तियों के लाभ के लिए साधारण देशवासियों से दो वर्षों के व्यापार में छः लाख तिहत्तर हजार एक सौ सत्रह पौंड (लगभग एक करोड़ रुपया) वसूल कर लिया गया। यदि व्यापार बेरोक या उन सब के लिये खुला होता जो निश्चित दर की चुंगी देते तो लोगों को उन्हीं चीजों के लिये जितनी रकम चुकानी पड़ती उसकी अपेक्षा उन्हें ऊपर बतलाई हुई रकम अधिक देनी पड़ी।"

इसके स्वाभाविक परिणाम के अनुसार व्यापारिक एकाधिकार के कारण बंगाल में नमक बनाने का धन्धा बहुत जल्द बरबाद होने लगा। जिन जिलों में नमक बनता था वे वहीं थे जो खाड़ी की हद्द से नदी में साठ मील ऊपर ज्वार के द्वारा समुद्र का पानी चढ़ने से सींचे जाते थे।

"उन जमीनों में नमक छोड़ कर और कुछ नहीं पैदा होता और उसी से रब कर प्रांत होता है; किन्तु देश के व्यक्तिगत व्यापार की हालत और कलकत्ते से इस सम्बन्ध में जब तब निकलने वाले उलटे

पलटे हुक्मों के कारण उन दिनो या उसके बाद भी कोई भारतीय नमक बनाने का साहस नहीं करता जब तक कि कम्पनी की नौकरी करने वाले प्रभावशाली मुख्य व्यक्ति द्वारा उसे व्यक्तिगत रूप से सहायता या रक्षा पाने का विश्वास नहीं होता। एक बार कलकत्ता में नमक बनाने वालो का एक दल आवेदन पत्र लेकर आया कि नदी के बाढ़ के पहले उन्हें नमक हटा लेने की आज्ञा दी जाय। लेखक ने ऐसे दो सौ आदमियों को इस उद्देश्य से सड़क पर गवर्नर की पालकी के चारो ओर देखा जो गवर्नर के सामने ज़मीन से माथा टेक कर लेटे पड़े थे। उन्हें दीवान के पास जाने के लिए कहा गया, हालाकि उसी आदमी के खिलाफ वे शिकायत करने गए थे; और उनके किसी तरह हुक्म पा सकने के पहले ही उनका नमक बाढ़ के पानी में बह गया।"

भारतीय वस्त्र का व्यवसाय कम्पनी की इस इच्छा के कारण बर्बाद हुआ कि वह इस व्यापार को पूरी तरह बिना किसी प्रतिद्वन्दी के अपने हाथ में करना चाहती थी।

बोल्ट्स ने लिखा है:

"जो लोग अॅग्रेजी ईस्ट इन्डिया और खास कर एशिया के कारबार का संचालन करते हैं उनके प्रत्येक कार्य इस दृष्टि से मालूम पड़ते हैं कि बंगाल के देशी व्यापार पर पूरी तरह एकाधिकार पाने का सुभीता हो। इसको पूरा करने के लिए देश के गरीब व्यवसाइयों और कारीगरो के साथ बहुत अत्याचार और क्रूरता के व्यवहार किए जाते हैं। कम्पनी वास्तव में इन सब पर गुलामों की भाँति एका-

धिकार रखती है । गरीब जुलाहों पर अत्याचार करने के बहुतेरे ढंग हैं जो प्रतिदिन कम्पनी के गुमाश्तों द्वारा इस देश में बर्ते जाते हैं, जैसे जुर्माना, हिरासत, कोड़े लगाना और जबरदस्ती मुचलका या इकरारनामा लिखाना, जिसके कारण इस देश में जुलाहों की संख्या इस देश में बहुत कम होती जा रही है। इसका स्वाभाविक नतीजा यह हुआ कि तैयार माल का अभाव, मँहगी और अवनति हो रही है साथ ही कर की भी बहुत अधिक हानि हो रही है ... ... जो लोग आम तौर से व्यवसायी और किसान दोनों है उनके साथ की जाती हुई सख्तियों का तो बयान ही नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा प्रायः होता है कि जिस समय लगान वसूल करने वाले अफसर एक ओर उन्हें तंग करते रहते हैं तो दूसरी ओर कम्पनी के गुमाश्ते के चपरासी उनके माल के लिए इस तरह ज़ोर देते रहते हैं कि उनका लगान चुका सकना उनकी शक्ति के बाहर हो जाता है·········ऐसे बर्ताव को उस बेवकूफी के बर्ताव से कम नहीं कहा जा सकता जिसमें सब सोने के अंडों को पा सकने से लिए मुर्गी मारने की बात सोची जाती है······इस कारण जुलाहा अपनी मेहनत की ठीक कीमत पाने की आशा से अपने माल को गुप्त रूप से दूसरे के हाथ, विशेष कर हालैन्ड और फ्रान्स के गुमाश्तों के हाथ बेचते हैं जो खरीदने के लिए बराबर तैयार रहते हैं। इस वजह से अंग्रेजी कम्पनी का गुमाश्ता अपने चपरासी को जुलाहों के पीछे लगाए रहता है और आमतौर पर थान बुनना खतम होते होते ही करघों से कटवा लेता है। इस कारण एकाधिकार के साथ व्यवसायियों के ऊपर प्रत्येक प्रकार के अत्याचार सारे

देश भर में रोज़ बढ़ते रहे हैं, यहाँ तक कि जुलाहे अपना माल बेंचने का साहस करने के लिए और दलाल तथा पयकार बिक्री में सहायता करने वा इस पर से नजर बचा जाने के कारण कम्पनी के गुमाश्तों द्वारा प्रायः पकड़े और कैद किए जाते हैं उन्हें हथकड़ी बेड़ी लगाई जाती है, उन पर भारी रकम जुर्माना होती है, कोड़े लगते हैं और बड़ी बेइज्जती के साथ उनकी जाति ले ली जाती है जिसे वे अपनी सबसे कीमती चीज़ समझते हैं ...... मुगल सम्राटों के समय में और नवाब अली वर्दी खाँ के समय में भी जुलाहे अपना माल स्वतन्त्रता-पूर्वकतैयार करते थे। उनपर कोई अत्याचार नहीं किया जाता था। और यद्यपि इस समय यह ऐसी बात नहीं है किन्तु प्रतिष्ठित ताँती परिवारों या कपड़ा बुनने वाली एक जाति की यह साधारण चलन थी कि वे अपना माल तैयार करने में अपनी ही पूँजी लगाते थे और अपने माल को स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी ओर से बेचते थे। इङ्गलैण्ड में इस समय एक सज्जन हैं जिन्होंने उस नवाब के समय में ढाका प्रान्त में एक ही दिन सबेरे मलमल के ८०० सौ थान अपने दर्वाजे पर ही खरीदे जो जुलाहों द्वारा अपनी इच्छा से उनके पास लाऐ गए थे। सिराजुदौला के समय के बाद वर्णित अत्याचार गुमाश्तों के मुकर्रर होने से अँग्रेजी कम्पनी की शक्ति बढ़ने के साथ प्रारम्भ हुआ।......और वह उपर्युक्त सज्जन ही सिराजुद्दौला के समय में साक्षी थे कि जङ्गलबाड़ी के आसपास के स्थानों में रहने वाले कपड़ा बुनने वाले व्यक्तियों के उसी सात सौ परिवारों ने अंपने देश और रोज़गार को तुरन्त इस प्रकार उन अत्याचारों के कारण छोड़ा जो

कि उन दिनों केवल प्रारम्भ हो रहे थे। लार्ड क्लाइव के पिछले दिनों के शासन-काल में कच्चे रेशम के व्यापार को बढ़ाने के कारण अत्यधिक जोश के कारण रेशम के कारीगरों का इतना अधिक पीछा किया गया कि समाज के पवित्रतम नियमों को क्रूरता-पूर्वक भङ्ग किया गया।"

देशी जुलाहे कपास काम में लाते थे जो बंगाल में उत्पन्न होती थी और बहुत अधिक मात्रा में गंगा और जमुना द्वारा बंगाल में पहुँचती थी। कम्पनी ने इस कपास पर ३० प्रतिशत चुंगी लगादी और कारीगरों को सूरत की रूई खरीदने पर मजबूर किया जिसे वे समुद्र के रास्ते मँगाते थे। इस प्रकार इस व्यवसाय का बर्बाद किया। भारत सरकार ने अंग्रेजों को विशेष अधिकार देना कभी बन्द नहीं किया। सन् १८५८ ई० में भारत में गोरों की बस्ती बसाने के विषय में पार्ल्यामेंट की कमिटी के सामने कमिटी द्वारा गवाही लेते समय यह बात खुली थी कि भारत के निवासियों का हक मार कर ये विशेष सुविधाएँ गोरों को किस प्रकार दी गई थीं। माडर्न रिव्यू के मई सन् १९१२ के अंक में पृष्ठ ४६१ पर लिखा है:

"उदाहरण के तौर पर चाय के बगीचों का मामला लिया जाय। चाय का बगीचा लगाने वाले गोरों को इस व्यापार में किस प्रकार सहायता दी जाती थी यह नीचे लिखे प्रश्न और उसके श्रीयुत जे० फ्रीमैन द्वारा दिए उत्तर से स्पष्ट है जो कि उपनिवेश के मामले में गवाह रूप में उपस्थित हुए थे।

प्रश्न "क्या आपको मालूम नहीं है कि आसाम और कमायूँ

दोनों में सरकार ने चाय के बगीचे इसलिए लगाए थे कि यहाँ आकर बसने वाले गोरों के लिए प्रयोग रूप में उसे देखा जाय और यों हो प्रयोग सफल हो जाय और उन बगीचो को अपने हाँथ में लेकर इस व्यवसाय को चला कर वहाँ बसने वाले गोरे तैयार मिलें तो उन बगीचों को उन के हाथ में दे दिया जाय ?"

उत्तर—"मैं उसी का हवाला दे रहा था; यह कि चाय की पहली फसल तैयार करने में सरकार ने प्रधान भाग लिया और उसे प्रोत्साहन दिया तथा उसके लिए कुछ हद तक व्यय भी किया। उसके बाद कुछ गोरों ने इसे बड़े पैमाने पर प्रारम्भ किया और प्रयत्न सफल नहीं हुआ, किन्तु कभी १४ साल पहले इस नये प्रबन्ध के परिणाम स्वरूप जिसमें सरकार ने ज़मीन के बारे में अधिक सुविधा-जनक शर्तें दी थी, आज-कल की कम्पनी खड़ी हुई जिसने इसे विस्तृत रूप से करना प्रारम्भ किया है ?"

प्र०—"क्या सरकार ने वास्तव में उस प्रयोग का सारा व्यय अपने ऊपर नहीं लिया और आसाम तथा कमायू दोनों में अपने बगीचों को उपनिवेश स्थापित करने वाले गोरों को बहुत उदार शर्तों पर नहीं दे दिया ?"

उ०—"मैं इससे अनजान हूँ, मैं यह नहीं कहूँगा कि ऐसा हुआ अथवा नहीं।"

प्र०—"क्या सर कार ने श्रीयुत फारचून और उनके पहले दूसरे व्यक्तियों को चाय का बीज और चीनी वा दूसरे चाय के व्यवसायियों को चाय बोने का चीनी तरीका पूछने के लिए बुलवाने को सिर्फ इस

उद्देश्य से नहीं भेजा था कि भारत में वे बसने वाले गोरों को इस सम्बन्ध में सिखावें ?"

उ०—"मै निश्चित रूप से यह नहीं जानता कि यह प्रयोग सरकार द्वारा किया गया था; मेरा विश्वास है कि यह बात ऐसी थी; किन्तु मैं यह जानता हूँ कि पहले चीन के आदमी बुलाए गये थे। इस बात की आशा की गई थी कि उनके द्वारा भारत के निवासियों को चाय की खेती के सम्बन्ध की पूरी जानकारी होगी किन्तु यह बात अब तक असफल रही।"

इस प्रकार यह बात देखी जा सकती है कि चाय के बगीचे के गोरे व्यवसायियों को भारतवासियों का हक़ मार कर किस प्रकार लाभ पहुँचाया गया है किन्तु सरकार ने विशुद्ध भारतीय व्यवसायियों को उत्साहित करने के लिए कभी कुछ नहीं किया है जिस प्रकार कि अधगोरों द्वारा चलाए हुए चाय के व्यवसाय के लिए उसने किया है।"

भारत सरकार ने विलायत के लोहे के व्यवसाइयों को बहुत उदारता पूर्वक सहायता देना स्वीकार किया था यदि उनमें से कुछ भारत में आकर बस सकें। इस प्रकार उपर्युक्त गवाह से पूछा गया था :

प्र०—"क्या आपको मालूम है कि सरकार ने लोहे के व्यवसाय के विशेषज्ञ एक सज्जन और उनके साथ बहुत से सहायकों को हाल ही में कमायूँ के प्रान्त में लोहे का व्यवसाय जारी करने के लिए भेजा है ?

उ०—"मैंने इसके बारे में पढ़ा है; किन्तु हम लोगों ने इस सम्बन्ध में अपने खर्चे से ही सब कुछ करना स्वीकार किया है।

प्र०—"क्या सरकार ने कहा है कि प्रयोग ज्यों ही सफल हो वह

इसे किसी भी अँग्रेज के हाथ सौंप देने के लिए तैयार है जो उसे लेने के लिए तैयार हो ?"

उ०—"हाँ ऐसा हो सकता है।"

उपर की बात पर आलोचना करना व्यर्थ है फिर समय-समय पर नील पैदा करने वाले व्यवसायियों ने भारतीय कर-दाताओं का हक छीन कर सरकार से समय-समय पर आर्थिक सहायता प्राप्त की है।

६—व्यापारिक गुप्त भेदों का भंडाफोड़

बोल्ट्स ने, जिसकी 'भारतीय मामलों पर विचार' (कन्सिडरेशन्स आन इन्डियन अफेअर्स) नाम की पुस्तक पलासी के युद्ध के दस वर्ष व्यतीत होने के पहिले ही प्रकाशित हुई थी, लिखा है:

"व्यापारिक एकाधिकार और अत्याचार जो कुछ वर्षों से, विशेष कर पिछले सात वर्षों से जारी है, बंगाल के असली कर की इतनी अधिक घटती के मुख्य कारण हो रहे हैं कि कम्पनी जल्दी ही उसका बहुत अधिक अनुभव करेगी क्योंकि रैयत जो साधारणतया काश्तकार और व्यवसायी है माल के लिए गुमाश्तों द्वारा तंग किए जाने की परेशानी से जमीन का सुधार करने और लगान चुकता कर सकने में भी प्रायः असमर्थ रहती है। दूसरी ओर इसी के लिए मुहकमा माल के अहलकारों द्वारा वे फिर तंग किए जाते हैं, और इन जालिमों द्वारा उन्हें लगान चुकाने के लिए अपने बच्चों तक को बेच देने व अन्यथा देश से भाग जाने के लिए मजबूर होना पड़ता है।"

इसी लेखक ने फिर लिखा है:

"हम एकाधिकार पर विचार करने जा रहे हैं, जो अत्यधिक क्रूर ढंग का है और बहुत ही अधिक विध्वंसक परिणामों का है, और बंगाल में इधर पिछले दिनों में स्थापित सभी प्रबन्धों में से बंगाल के मामले के लिए नतीजे के ख्याल से सबसे ज्यादा खतरनाक है, शायद यह सार्वजनिक विधान के रूप से समझने पर, इस भूतल पर किसी

काल में भी स्थापित किसी भी सरकार के इतिहास में बेजोड़ है, और हमें यह विचार कर कम आश्चर्य नहीं होता कि किन आदमियों ने इसका परिचालन किया और उन्होंने जीवन के लिए आवश्यक समझी जाने वाली वस्तुओं के ऐसे बंदिश के रोजगार को कायम करने के लिए कुछ वजहें बतलाईं ।"

यह वोल्टस द्वारा उल्लिखित है कि :

"कम्पनी के गुमाश्तों द्वारा भारतीय जुलाहों पर जबरदस्ती लादे गये शर्तनामों को, जिन्हें बंगाल में आम तौर पर मुचलका कहा जाता था, पूरा करने की उनकी असमर्थता होने पर उनका माल छीन लिया जाता और उसे वहीं बेचकर टोटा भरा जाता; और कच्चे रेशम को कातने वालों के साथ जिन्हें नागौड कहते थे, ऐसे अत्याचार का व्यवहार किया जाता था कि रेशम कातने से मजबूर होने से बचने के लिए उनके अपने हाथ काट लेने के उदाहरण पाये जाते हैं ।"

ईस्ट इन्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक वर्षों में भारतीय उद्योग-धन्धों को बरबाद करने के लिए जितने उपाय किये गये उन सब की यहाँ चर्चा करना आवश्यक नहीं है, किन्तु उन सब उपायों से ही भारतीय उद्योग-धन्धों और व्यवसायों का सर्वथा लोप नहीं हुआ क्योंकि आखिर कार ज्ञान शक्ति है,और विलायत के व्यवसायी उन अनेक प्रक्रियायों से अनभिज्ञ थे जिसका भारतीय कारीगर अपनी चीज वस्तुओं के निर्माण करने में उपयोग करते थे ।※

※ "व्यवसायी जाति की दृष्टि से हम लोग अब भी उनसे (भारतीयों से) बहुत अधिक पीछे हैं ।" सर टामस मुनरो

१८५१ ई० की पहिली अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी का होना विलायत के व्यवसायियों के लिए भारत के बाजारों के लिये चीजें उत्पन्न करने के लिए केवल उत्तेजक ही नहीं थी बल्कि उन्हें भारतीय कारीगरों के व्यापारिक मर्मों के सीखने का अवसर भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से देने वाली थी। विलायती व्यवसायियों ने भारतीय कारीगरों से उन गुप्त प्रक्रियायों के जान लेने की कोशिश करने में कुछ उठा न रक्खा जिनके द्वारा भारतीय अपनी सुन्दर वस्तुओं का निर्माण करते थे। पहिली अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी के होने के दो वर्ष बाद ही ईस्ट इन्डिया कम्पनी को भारत में व्यापार करने का अधिकार-पत्र फिर से मिला, भारतीय मामलों को जाँच करने के लिए पार्ल्यामेन्ट द्वारा जो समितियाँ नियुक्त हुई थीं उनके सामने उपस्थित अनेक गवाहों ने अपनी गवाही में कहा था कि विलायती व्यवसायियों को उनकी वस्तुओं के लिए भारत में विस्तृत विक्रय-क्षेत्र बनाने की सुविधायें दी जानी चाहिये।

उसी समय प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी के भारतीय विभाग के प्रबन्धक डा० जान फोर्ब्स रायल ने कोर्ट आफ डाइरेक्टरों को लन्दन में एक प्रदर्शन भवन स्थायी रूप से भारत की उपज और तैयार वस्तुओं को प्रदर्शित करने के लिए स्थापित करने की आवश्यकता बताई। इसके कहने की आवश्यकता नहीं कि फोर्ब्स ने बहुत ही अधिक प्रसन्नता से यह योजना स्वीकार की क्योंकि यह प्रदर्शन भवन भारत के व्यय से स्थापित और विलायत के बहुत अधिक निवासियों को भोजन-वस्त्र प्रदान करने वाला था। किन्तु इस प्रदर्शन भवन की व्यवस्था पूरी करने के पहिले ही सन् १८५८ ई० में उसकी मृत्यु हो

गई। डा० फोर्ब्स वाटसन उसका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। इसी के कार्य-काल में भारतीय बुनाई के धन्धे के सत्यानाश का अंतिम पग उठाया गया।

यह अंतिम उपाय क्या था इसका वर्णन स्वयं डा० वाटसन ने किया है :

"भारतीय प्रदर्शन भवन के गोदाम में मौजूद भारत के प्रधान बुने वस्त्रों के सब नमूने १८ बड़ी जिल्दों में एकत्रित हैं, जिनके कुल इसी तरह की जिल्दों के नमूने २० सेट तैयार किए गए हैं। प्रत्येक सेट दूसरे सभी सेटों से बिल्कुल मिलता जुलता रक्खा गया है। १८ जिल्दों में, जिनसे एक सेट बनता है, ७०० नमूने हैं जो सर्वथा पूर्ण और सुविधाजनक रूप में भारतीय धन्धे के इस विभाग को प्रदर्शित करते हैं। ये बीसों सेट विलायत और भारत में वितरित होने वाले हैं। **१३ तो विलायत में और ७ भारत में,** जिससे २० ऐसी जगह हो जायेगी जहाँ पर बिल्कुल एक ही तरह के नमूने मौजूद होंगे और उनकी ऐसी तरतीब होगी कि जरूरत होने पर उनका एक दूसरे से हवाला दिया जाना सम्भव होगा।"

ऊपर के उदाहरण से प्रगट है कि विलायत में १३ और भारत में ७ सेट वितरित करते हुए अधिकारियों को अनुपात का ध्यान रखने की कुछ आवश्यकता नहीं जान पड़ी। भारत में ७ सेट भेजे जाने की बात भी बाद में सोची गयी थी। अधिकारियों का ऐसा इरादा प्रारम्भ में नहीं था जैसा कि डा० वाटसन के लिखने से प्रगट है :

"प्रारम्भ में यह इरादा था कि २० सेट इस देश में (इंगलैण्ड)

में ही बँटवाये जाँय, बाद के विचार से उनमें से कुछ भारत में भेज देने की आवश्यकता समझी गई; एक तो इसलिए कि ऐसा होने से दोनों देशों के बीच होने वाले व्यापार को सुविधा प्राप्त होगी जिसका प्रोत्साहन और वृद्धि इस काम का लक्ष्य है; दूसरे इसलिए कि यह सम्भव है कि इस संग्रह से भारतीय व्यवसायियों का सोधे कुछ लाभ हो।

"किसी प्रकार वस्त्रों के नमूनों के कुछ सेट भारत में वितरित होने से सम्भवतः होने वाला मुख्य लाभ यह होगा कि विलायत के एजेन्ट को अपने हल्के की आवश्यकताओं के लिए उपयोगी वस्तुओं की ओर बिलायती व्यापारियों का ध्यान आकर्षित कराने का अवसर मिलेगा।"

इस अंतिम उद्धृत अंश में लेखक ने वास्तविक उद्देश्य को बिल्कुल खोल कर रक्खा है।

भारत में ७ सेटों के रखवाने के लिए डा० वाटसन ने सिफारिश की थी "कि निम्नांकित प्रत्येक स्थान में एक २ सेट रक्खा जाय; कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, कराँची, पश्चिमोत्तर प्रान्त (अब युक्त प्रान्त) पंजाब और बरार।

"अंत में उल्लिखित तीनों प्रान्तों के सम्बन्ध में पश्चिमोत्तर प्रान्त में इलाहाबाद, मिर्जापुर, या आगरा, पंजाब में अमृतसर या लाहौर, बरार में अमरावती या नागपुर सम्भवतः सबसे उपयोगी स्थान होंगे लेकिन निश्चित स्थान तय करने का काम उन प्रान्तों की सरकारों पर छोड़ देना चाहिए।"

पश्चिमोत्तर प्रान्त (अब युक्त प्रान्त) के लिए सेट डा० वाटसन की सिफारिश की हुई किसी जगहमें नहीं रक्खा गया। यह लखनऊ के के प्रान्तीय अजायब घर में रक्खा हुआ है। वहाँ पर यह सितम्बर १८७८ ई० में इलाहाबाद के अजायब घर से उठ कर गया था। लखनऊ बुनाई के व्यवसाय का कोई केन्द्र नहीं है फिर भी नमूने का सेट वहाँ रक्खा हुआ है।

डा० वाटसन ने इसके आगे लिखा था :

"यह भेट दी जाने की शर्तों के सम्बन्ध में—पहला यह होना चाहिए कि इसकी स्थायी रक्षा का उचित प्रबन्ध होना चाहिए और दूसरे सभी उचित रूप से सिफारिश किये गये और व्यावहारिक रूप से दिलचस्पी रखने वाले सभी लोगों को इसके देखने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

"निर्वाचित स्थान में मुख्य व्यापारिक अधिकारियों को धरोहर के रूप में देना चाहिए। जिस स्थान में रक्खा गया हो उस जिले से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों के प्रयोग के लिए ही भर न हो चाहिए बल्कि उन बाहरी व्यक्तियों के प्रयोग के लिए भी होना चाहिए जो बुनाई के धन्धे में दिलचस्पी रखते हों। भारत में ७ सेटों के भेजे जाने के प्रस्ताव के कारण इस देश में इसकी एक प्रति पा सकने वाले व्यापारिक केन्द्रों की संख्या कम हो जाती है। इसलिए जिन स्थानों को इसकी एक प्रति मिले उनके लिए यह अधिक आवश्यक हो जाता है कि इस नमूने को न रखने वाले दूसरे स्थान के गुमाश्तों व्यापारियों और व्यवसायियों के लिए इसे सुलभ बनावें।"

इस तरह विलायत में किसी व्यक्ति के लिए उसे देख सकना कठिन नहीं था किन्तु भारत में इस नमूने की मौजूदगी एक हजार शिक्षित व्यक्तियों में ९९९ व्यक्तियों को भी मालूम नहीं है। जुलाहों और अन्य अशिक्षित कारीगरों को तो और भी नहीं मालूम। यह जानना मनोरंजक हो सकता है कि भारत में रक्खे हुए नमूनों को किसी एक भी शिक्षित भारतीय ने कभी देखने का कष्ट उठाया है कि नहीं। इस सम्बन्ध में कुछ अधगोरे अंग्रेजों के द्वारा देखा गया होगा किन्तु हमारी समझ में इस देश के किसी भी शिक्षित निवासी द्वारा यह न देखा गया होगा।

चूँकि ये सेट भारत के व्यय से तैयार हुए थे और अब स्वदेशी आन्दोलन की कृपा से इस देश में बुनाई के धंधे को उत्तेजना मिल रही है तो क्या यह उपयुक्त अवसर नहीं है और यह न्याययुक्त तथा उचित नहीं है कि १३ सेट जो विलायत में रक्खे हुए हैं भारत में वापस लाये जायँ? और इस देश के व्यापार और व्यवसाय के मुख्य केन्द्रों में रक्खे जायँ? पहिली कार्यवाही के रूप में क्या हम इसकी माँग नहीं पेश कर सकते कि भारत में इन सातों सेटों की मौजूदगी का लोगों को अधिक संख्या में ज्ञान कराया जाय? बुनाई के धंधे में वास्तव में लगे हुए सभी भारतीयों को इसे सुलभ बनाया जाय।

१८ जिल्दों के इन २० सेटो में से प्रत्येक

"बीस व्यावसायिक अजायब घर माना गया था जो भारत की बुनाई का तैयार माल प्रदर्शित करने वाला और पूर्व तथा पश्चिम

के मध्य इनका जहाँ तक सम्बन्ध था व्यापार कार्य को प्रोत्साहित करने वाला था।"

निःसन्देह यह पूर्व की अपेक्षा पश्चिम के अधिक लाभ का था और इसे डा० वाटसन ने स्वयं स्वीकार किया था; वह लिखता है :

"कि भारत और साथ २ विलायत के लोगों के लाभ का इस मामले में सम्बन्ध है और दोनों के लाभों पर अवश्य विचार करना चाहिए; सर्व प्रथम हमारी टिप्पणी विशेष कर विलायत वालों के उपयुक्त होगी।

"यदि हम किसी व्यक्ति या जाति को ग्राहक बनाने का प्रयत्न करें तो हम वही वस्तुएँ तैयार करते हैं जिनको उसके द्वारा पसंद होना समझते हैं और उन्हीं चीजों की बिक्री करते हैं। हम अपनी रुचि और आवश्यकतानुसार वस्तुओं को दूसरे पर लादने की कोशिश नहीं करते, बल्कि वही चीजें बनाते हैं जो ग्राहक को पसंद आये और जिसकी उसे जरूरत हो। अंग्रेज व्यवसायी साधारणतया इस नियम का पालन करता है।

किन्तु भारत के सम्बन्ध में ऐसा करने से वह चूक गया जान पड़ता है अथवा इसे इतनी कम सफलता के साथ कर सका है कि इसे प्रायः यही माना जा सकता है कि वह प्राच्य रुचि और स्वभाव को समझ सकने में बिल्कुल असमर्थ है। हमारे व्यवसायियों की समझ के बाहर शायद कोई चीज नहीं है किन्तु यह स्वीकार किया जा सकता है कि इस सम्बन्ध में कुछ शिक्षा की आवश्यकता है और इसके बिना भारतीय आभूषणों और रूपों की कुछ विशेषताओं का मूल्य ठीक तरह

अनुभव नहीं किया जा सकता, ऐसी शिक्षा का साधन बहुत सुलभ होना चाहिए जो अब तक नहीं है क्योंकि व्यवसायी किसी निश्चय रूप से यह नहीं जानते रहे हैं कि कौन से माल उपयुक्त होंगे। पूर्वी रुचि और आवश्यकताओं की कुशलता प्राप्त करने के लिए उस समय भी अध्ययन और अधिक विचार की आवश्यकता होगी जब कि अध्ययन के साधन सुलभ हो किन्तु इस समय तक व्यवसायी आवश्यक वस्तुओं का पूर्ण और ठीक ज्ञान प्राप्त करने का ठीक सुलभ अवसर नहीं पा सकते थे।

हमारा विश्वास है कि ऊपर वर्णित यह कमी इन स्थानीय अजायब घरों से पूरी होगी।

"सात सौ नमूनो से (हम फिर बता देना चाहते हैं कि वे सब चालू बा नगी हैं) यह प्रकट होता है कि भारतनिवासी बुनाई के क्षेत्र में क्या कर सकते हैं और क्या समझते हैं, और यदि ये विलायत से मुहैया किये जाँय तो यह विलायत में जरूर नकल किये जाने चाहिए किस चीज की जरूरत है और उसको पूरा करने के लिए किस चीज की नकल करने की जरूरत है और उसको पूरा करने की जरूरत है यह बात इन अजायब घरों में अध्ययन करने के लिए मौजूद है।"

इस तरह यह सब कुछ लोकोपकार की ही भावना से था कि भारतीय वस्त्रों के नमूने विलायती व्यवसायियों को सुलभ बनाये गये!

किन्तु १८८६ ई० तक भी भारतीय बुनाई का व्यवसाय पूरी तरह बरबाद न हो सका था, क्योंकि डा० फोर्ब्स वाटसन लिखता है:

"अंग्रेज व्यवसायियों को भारत के उच्च श्रेणी के एक करोड़



व्यक्तियों को अपने ग्राहक की तरह नहीं देखनी चाहिए बल्कि नीचे दर्जे के करोड़ों आदमियो को देखना चाहिए, सूती अथवा सूत और ऊन के मेल से बने सादे और सस्ते कपड़ों की बिक्री करने का उन्हें बहुत अधिक मौका है और यदि वे कपड़ा तैयार करवाते समय उन लोगों की रुचि और आवश्यकता का ध्यान रक्खें जिनके हाथ उन्हें बेचना है तो वे बहुत ही अधिक बिक्री कर सकेंगे।

"आज हम भारत को ऐसे देश के रूप में जानते हैं जिसका कच्चा माल हमारे पास अत्यधिक आता है, इनका मूल्य हम कुछ तो बदले में चीजें देकर और कुछ नकद रुपये देकर चुकाते हैं; किन्तु भारत हम लोगो से कभी चीजें मोल नहीं लेता जिससे उनसे हम लोगों की खरीद की हुई चीजो का दाम फिर से चुकता हो सके। इसका नतीजा यह होता है कि हमें बकाया भारी रकम सोने चाँदी के रूप में भेजनी पड़ती है जो हम लोगों के पास फिर वापस नहीं आती, वहाँ ऐसे लुप्त हो जाती है मानों वह समुद्र में गिर गई हो,हम उससे कपास,नील, कहवा और मसाले खरीदते हैं और हम उसके हाथ अपनी शक्ति भर कपड़ों और अन्य तैयार मालों के रूप में चीजे बेचते हैं। फिर भी यह न भूलना चाहिए कि एक समय था कि भारत हम लोगो को कपड़े बहुत अधिक मुहैया किया करता था, प्रसिद्ध लंकलाट कपड़ा हमें वही भेजता था और कैलिको (सादे सूतो कपड़े का नाम) शब्द कालीकट से बना है जहाँ ऐसा कपड़ा बना करता था। वह अब कभी इस तरह के तैयार माल को विदेश में भेज सकने की सामर्थ्य नहीं प्राप्त कर सकेगा ....किन्तु यह बात साफ है कि भारत की आम जनता

को सस्ते से सस्ते सम्भव दर पर वस्त्रों के मुहैया होने से उन्हें लाभ ही होगा। इसे जो करता हो वह करे; यदि इंगलैन्ड भारत को लुंगी, धोती, साड़ी और कैलिको (सादे सूती कपड़े) ऐसे दर पर दे सकता है जो भारत के जुलाहों की अपेक्षा सस्ता हो तो दोनों देशों को लाभ होगा।

"विलायत की बुद्धि और कलें भारत को वहाँ के निवासियों के पहनने के लिए सस्ते वस्त्र दे सकें तो यह एक उसकी तात्कालिक सेवा होगी, इस लक्ष्य को पूरा करने में इन नमूनो से अवश्य सहायता मिलेगी जो विलायती व्यवसायियो को यह बता सकते हैं कि भारतीयो को कैसी चीजों की जरूरत है।"

*"साधारण सिद्धान्त यह रखा गया था कि इंगलैन्ड अपने सब तैयार माल को भारत पर लादे और बदले में भारत से कोई तैयार माल न ले। यह सच है कि वे रूई मँगवाने में मेहरबानी दिखलाते थे किन्तु इसके बाद जब उन्हें यह मालूम पड़ा कि वे कलों के द्वारा भारत के लोगों की अपेक्षा सस्ते कपड़े तैयार सकते थे तो वे कहने लगे "तुम बुनने का काम छोड़ दो, तुम हमारे पास कच्चा माल भेजो और हम तुम्हारे लिए बुनाई करेंगे" यह व्यापारियों और व्यवसाइयों के करने की बहुत स्वाभाविक सिद्धान्त की बात हो सकती है, किन्तु इस बात की बेहतरी कीडींग हाँकना अथवा इसके समर्थकों को

---

*इस सम्बन्ध मे पाठकों को यह स्मरण करा देना आवश्यक है कि सन् १८१३ ई० में विलायत की पार्ल्यामिन्ट हाउस आफ कामन्स के एक सदस्य श्री टिमर्नी ने उसकी बैठक में एक भाषण में उपर्युक्त बातें कही थी :

विशेष रूप से भारत का हितचिन्तक कहना व्यर्थ की बात थी, यदि वे अपने को भारत का हितचिन्तक बताने के स्थान पर भारत के शत्रु रूप में होते तो सभी भारतीय व्यवसायियों के विध्वंस करने की सलाह देने से और अधिक क्या कर सकते थे !"

इस लोकोपकार के कार्य के संबन्ध एक में, अँग्रेज अफसर लिखता है:

"यह बात हरएक आदमी जानता है कि व्यावहारिक गुप्त भेद कितनी सावधानी से छिपा रक्खे जाते हैं। यदि आप किसी विलायती कारखाने को देखने जाइए तो आपको कोई पूछेगा भी नहीं; फिर भी अपने जोर का डर दिखा कर भारतीय कारीगरों को कपड़े निखार कर सफेद बनाने की विधि तथा अन्य व्यापारिक मर्मों का भंडाफोड़ विलायती व्यवसायियों के लिए करने को विवश होना पड़ा। अँग्रेज सरकार ने भारत के गरीब निवासियों से प्रति वर्ष २ करोड़ रुपया वसूल करने में मैनचेस्टर के व्यवसायियों को समर्थ बनाने के लिए एक कीमती चीज (७०० भारतीय कपड़ों के नमूनों का सेट) तैयार करवाई; इसकी प्रतियाँ विलायत के व्यापार-मंडलों को उदारता पूर्वक भेंट की गई और उनके तैयार करने का खर्चा भारतीय रैयत को अपने ऊपर लेना पड़ा। यह राजनीतिक अर्थ शास्त्र हो सकता है किन्तु यह बिल्कुल अजीब तरह की कोई दूसरी चीज है।

(मैजर जे० बी० कीथ द्वारा ७ सितम्बर १८९८ को पायनियर नाम के दैनिक अँग्रेजी अखबार में प्रकाशित)

यह बड़े दुख की बात है कि भारतीय अर्थशास्त्र के किसी लेखक ने अब तक इस बात की चर्चा नहीं की है कि नुमाइशों

के किए जाने और भारत के तैयार कपड़ों के नमूनों के बटवाने का भारत के बुनाई के धन्धे के बरबाद करने में कितना प्रभाव पड़ा है, शायद मार्ग-कर और आयात-निर्यात-कर लगाने से भी भारतीय धन्धो की बरबादी इतनी अधिक न हुई और न हो सकती थी यदि सरकार भारतीय कारीगरों को विलायत के व्यवसायियों के लिए अपने व्यापारिक गुप्त भेदों का भंडाफोड़ करने के लिए मजबूर न किए होती।

सम्पूर्ण भारत के सूती कपड़ों की मिलें और हाथ के करघे के कारखानों के मालिकों को इस मामले में आवाज उठानी चाहिए कि भारत में इस समय मौजूद भारतीय वस्त्रों के नमूने के ७ सेटों को भारतीय व्यवसायियों के लिए बहुत अधिक सुलभ बनाया जाय और विलायत में पहुंचे हुए १३ सेटों को भारत में वापस किया जाय। ऐसा करने से असली भारतीय नमूनों और रंगों के पुनरुद्धार करने में बहुत अधिक सहायता मिलेगी।

भारत में विलायती पूँजी

भारत के गैरसरकारी गोरों द्वारा हाल में ही यह आदेश भेजा गया है कि भारतीयों को स्वराज्य के ढंग की कोई चीज न दी जाय, जब तक कि यह बात साबित कर न दिखाई जा सके कि स्वराज्य-प्राप्त भारत में ब्रिटिश पूँजी के हितों की तनिक भी हानि न होगी, जिसके साफ साफ अर्थ यह हैं कि भारत में चाहे जिस प्रकार के वैधानिक परिवर्तन किये जायँ किन्तु विलायती व्यापारियों, चाय आदि का बाग लगाने वालों और व्यवसायियों का भारत में उन सभी उचित और अनुचित सुविधाओं और इस देश के धन-कोषों को शोषण करने के साधनों पर वैसा ही विशेष अधिकार रहे जैसा अब तक रहता आया है। इस कारण यह आवश्यक है कि भारत में गोरों द्वारा लगाई हुई पूंजी किस अर्थ में किस हद तक विलायती है, इसकी जाँच-पड़ताल की जाय और यह भी देखा जाय कि इस पूंजी से पूर्ण रूप व मुख्य रूप से भारतीयों को लाभ पहुँचा है या नहीं। जाँच-पड़ताल का दूसरा क्षेत्र, जिस पर ध्यान देना चाहिये, यह है कि विलायती पूंजी के लगाये जाने की भारत के हित में आवश्यकता थी या नहीं। हम इस अध्याय में मुख्यतयः इस प्रश्न के पहले पहलू पर ही कुछ विचार करने जा रहे हैं।

जिस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी धीरे धीरे बंगाल और भारत के दूसरे प्रान्तों की अधिकारिणी बनी, भारत भिखमंगों का देश नहीं

था। इस देश में बहुत काफी पूंजी थी। हम अंग्रेज लेखकों के लेखों से ही यह बात सिद्ध करेंगे। एक अर्द्ध सरकारी लेखक वाल्टर हैमिल्टन ने ईस्ट इण्डिया गजेटियर (द्वितीय संस्करण, लन्दन १८२८ ई० जिल्द पहली पृष्ठ २१४) में लिखा है :—

"(बगाल के) अन्तिम दो सूबेदारो जफर खाँ (उर्फ मुर्शिद कुली खाँ) और शुजा खाँ के शासन-काल में, जिन्होंने एक के बाद एक लगभग ४० वर्ष तक शासन किया, देश की दशा बहुत फूली-फली थी और करो का बोझ नहीं मालूम पड़ता था, हालांकि दिल्ली को भेजे जाने वाले वार्षिक कर आमतौर पर एक करोड़ रुपये होती थी........अली वर्दी खाँ के अनुचित रूप से सूबेदार होने के बाद भी जमींदार इतने सुखी थे कि एक समय उसे एक लाख रुपया और दूसरे समय में पचास लाख रुपया मराठों के आक्रमण रोकने में हुये अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिए चन्दा रूप में दिया।"

भारतवर्ष के वैभव का कारण सारे संसार द्वारा उसके प्राकृतिक और कृत्रिम उपजो की बिक्री के रूप में निरन्तर बरसता हुआ सोना और चाँदी था। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डाक्टर राबर्टसन लिखता है:—

"सभी युगो में सोना और चाँदी, विशेषकर चाँदी अत्यधिक लाभ के साथ भारत को दूसरे देशो से आने वाले पदार्थ रहे हैं। भूमंडल के किसी भी भाग के निवासी अपनी जीवन की साधारण आवश्यकताएँ वा विलास की सामग्रियो के लिये दूसरे देशों पर इतने कम आश्रित नहीं रहते। उपयुक्त ऋतु और उपजाऊ भूमि के अति-

रिक्त उनके अपने कौशल के उपयोग से सभी मनोवांछित वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। इसके परिणाम-स्वरूप उनके साथ एक निश्चित रूप में व्यापार सदा होता रहता है और उनकी प्राकृतिक अथवा कला से उत्पन्न अद्भुत वस्तुओं के बदले बहुमूल्य धातु आते रहे हैं—(भारत के सम्बन्ध में ऐतिहासिक विवेचन—ए हिस्टारिक डिस्क्विज़िशन कनसर्निंग इंडिया, नवीन संस्करण, लन्दन, १८१७ पृष्ठ १८०):

उपर्युक्त लेखक ने ही दूसरी जगह फिर लिखा है:—

"सभी युगों में भारत के साथ व्यापार एक ही सा रहा है और वहाँ सोने चाँदी की वर्षा समान रूप से उन चीजों के खरीदने के लिए होती रही है जिन्हें वह सब देशों में इस समय भेजता है; और पुराने युग से लेकर अब तक यह सदा एक ऐसी भारी खाई के रूप में माना जाता है जो अन्य सभा देशों के धन को हड़प कर जाता है जो निरन्तर उसके पास आता रहता है और वहाँ से फिर वापस नहीं जाता।" (उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २०)

दूसरे अंग्रेज लेखक के निम्नाङ्कित उद्धरण से प्रगट है कि इस वैभव का सबसे बड़ा भागीदार बंगाल था :—

"बंगाल के प्रत्येक भाग में नाव चलाने योग्य नदियाँ भरी हुई हैं इसलिये देशी व्यापार कारवाँ की अपेक्षा कम व्यय और अधिक सुभीते से नावों द्वारा होता था; तथा इन नदियों के कारण, इस बड़ी सुविधा के साथ भूमि बहुत उपजाऊ होने के कारण और यहाँ के निवासियों के कौशल के कारण प्रत्येक युग में यह देश भर

में सब से अधिक सुखी और सम्पन्न रहा है।" (एशियाटिक एनुअल रजिस्टर १८०१ पृष्ठ १६)

जब सन् १८५७ ई० में क्लाइव ने मुर्शिदाबाद में प्रवेश किया तो इसके विषय में लिखा था :

"यह नगर इतना अधिक विस्तृत, घना बसा हुआ और धनी है जितना कि लन्दन, अन्तर केवल इतना ही है कि लन्दन की अपेक्षा मुर्शिदाबाद में बहुत ही अधिक सम्पत्ति वाले व्यक्ति हैं।"

ऊपर दिये हुए उद्धरणों से सिद्ध है कि अँग्रेजों के अधिकार में आया यह देश धनी था। इस धन का बहुत अधिक भाग अनेक मार्गों से विलायत जाता रहा और उससे विलायत ने सम्पत्ति ही नहीं बढ़ाई बल्कि सम्पत्ति उत्पन्न करने की शक्ति बहुत अधिक बना ली। बंगाल और कर्नाटक के अपार धन के विलायत पहुँचने से इङ्गलैण्ड औद्योगिक दृष्टि से सम्पन्न हो सका; ब्रूक्स ऐडम ने सभ्यता और उसके अवसान के सिद्धान्त (दि ला आफ सिविलज़ेशन ऐन्ड डिके) में लिखा है:

"भारतीय पूँजी के बहाव ने राष्ट्रों की नकद पूँजी को बहुत अधिक बढ़ाकर उसके शक्ति भंडार को ही नहीं बढ़ाया बल्कि उसके लोप और हेरफेर की गति को बहुत अधिक किया, प्लासी युद्ध के कुछ ही बाद बंगाल के लूट का धन लन्दन में पहुंचना प्रारम्भ हुआ और परिणाम तुरन्त हुआ जान पड़ता है क्योंकि सभी लेखक इससे सहमत हैं कि औद्योगिक क्रान्ति, वह घटना जो १६ शताब्दी को सभी

पिछले समयों से पृथक करती है, १७६० ई० में प्रारम्भ हुई; बेनिज़ के अनुसार सन् १७६० ई० के पहिले लंकाशायर में सूत कातने की कल उतनी ही मामूली थी जितनी कि हिन्दुस्तान में जबकि, ७५० ई० के लगभग अँग्रेजी लोहे का व्यवसाय पूर्ण अवनति को प्राप्त था क्योंकि उसमें काम आने वाली लकड़ी के जंगल बहुत कुछ कट चुके थे, उस समय अंग्रेजी राज में इस्तेमाल होने वाले लोहे का ४/५ स्वीडन से आता है।

"प्लासी का युद्ध सन् १७५७ ई० में हुआ और सम्भवतः उसके होने वाले परिवर्तन की गति की कोई तुलना नहीं हो सकती। सन् १७६० ई० में करघे में ढरकी को अपने आप चलाने वाले यंत्र का आविष्कार हुआ तथा भट्टी के लिए लकड़ी का स्थान पत्थर कोयले ने लिया; सन् १७६४ ई० में हारग्रीव्ज ने सूत कातने वाली कल आविष्कृत की; सन् १७७६ क्राम्पटन ने सूत कातने का परिष्कृत यंत्र बनाया तथा सन् १७८५ ई० में कार्टराइट ने कल द्वारा चलने वाला करघा बनाया और इन सबसे मुख्य सन् १७६८ ई० में जेम्स वाट ने भाप के इञ्जिन का जन्म दिया जो शक्ति के केन्द्रित करने के सब साधनों में सबसे अधिक पूर्ण था, किन्तु यद्यपि इन कलों ने उस समय की प्रगति के आन्दोलन को बढ़ने वाले मार्ग का स्थान लिया किन्तु उन्होंने वह प्रगति स्वयं नहीं उत्पन्न की। आविष्कार स्वयं निष्क्रिय होते हैं उनमें से बहुत अधिक महत्वपूर्ण में से अधिकांश शताब्दियों तक सुप्त पड़े रहते हैं और ऐसी शक्ति के पर्याप्त भंडार के संचित होने की प्रतीक्षा करते रहते हैं जो उन्हें कार्यान्वित करें।

वह भंडार सदा धन के रूप में होना चाहिए। वह धन भी संचित नहीं बल्कि हेर फेर होते रहने वाला होना चाहिये......भारतीय धन के बहाव और उससे उत्पन्न होने वाले ऋण के प्रसार के पहिले इस कार्य के लिए पर्याप्त शक्ति मौजूद नहीं थी; और यदि जेम्सवाट ५० वर्ष पहिले उत्पन्न हुआ होता तो वह और उसके आविष्कार अवश्य ही साथ ही साथ लुप्त हो गये होते......:... सम्भवतः सृष्टि के प्रारम्भ होने के समय से किसी पूँजी के प्रयोग से उतना लाभ नहीं उठाया गया जितना भारतीय लूट से उठाया गया क्योंकि लगभग ५० वर्षों तक इंगलैण्ड बिना प्रतिद्वन्दी के ही रहा........।

"सन् १६६४ ई० से प्लासी के युद्ध (सन् १७५७ ई०) तक उन्नति आपेक्षिक रूप से धीमी थी सन् १७६० और १८१५ ई० के बीच उन्नति बहुत अधिक तीव्र गति से और आश्चर्य-जनक हुई, केन्द्रित समाजों में ऋण शक्ति का विशद वाहक है और लंदन में जड़ जमाने के लिये ज्योंहीं पर्याप्त धन संचित हुआ त्योंही विस्मय-जनक तीव्रता से इसकी अत्यधिक वृद्धि हुई, बंगाल के सोना चांदी के आने से बैंक आफ इङ्गलैंड, जो पहिले बीस पौंड से अधिक के नोट चालू कर सकने में असमर्थ था, तुरंत ही दस और पन्द्रह पौंड के नोट निकाल सकने में समर्थ हुआ और व्यक्तिगत तिजारती कोठियों में हुंडियों की भरमार हो गई।

"इस तरह इङ्गलैंड की औद्योगिक उन्नति का मुख्य प्रारम्भ और इसी कारण उसकी पूँजी के बड़े भाग का प्रधान स्रोत उसके भारत

के संबन्ध में ही देखा जा सकता है, अनुमान किया गया है कि प्लासी के युद्ध से लेकर वाटरलू के युद्ध तक लगभग १० अरब पौंड की रकम भारत से इङ्गलैंड को गई।"

इस कारण हमें यह नतीजा निकालना पड़ता है कि सर जार्ज बर्ड ऊड ने नीचे जो बात लिखी है बिल्कुल सचाई ही थी:

"भारत ने हम लोगों के लिए सब कुछ किया है, वह सब कुछ जिससे ये ब्रिटिश टापू, जो इस भूतल पर इतने तुच्छ हैं जितने कि जापान के टापू, इतने बड़े साम्राज्य रूप में बन सके जितना संसार ने कभी नहीं देखा, और इसके लिये हम भारत के चिर ऋणी हैं।"

अब हम यह निश्चय करने के लिए ईस्ट इन्डिया कम्पनी के समय की कुछ बातों पर ध्यान देगें कि उस समय भारत में लगाई गई विलायती पूँजी किस तरह की थी; ३० मार्च सन् १८३२ ई० को श्री युत डैविड हिल से पार्ल्यामेन्ट की कमेटी के सम्मुख गवाह रूप में पूछा गया था :

"नील की खेती करने वाले गोरों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली पूंजी कहाँ से आती है?" उसने उत्तर दिया था :

"यह अकेले भारत में ही जुटा ली जाती है"

श्रीयुत डैविड हिल के अतिरिक्त अन्य बहुत से गवाहों ने बतलाया था कि इङ्गलैंड से भारत को बिल्कुल ही नहीं या बिल्कुल कम पूँजी मँगाई जाती थी या मँगाई जायगी, इस प्रकार श्रीयुत डबलू० बी० बेली ने १६ अप्रैल १८३२ ई० को पार्ल्यामेन्ट की कमेटी के सम्मुख कहा था :

"मेरी यह राय कि इङ्गलैंड से भारत को कोई भी पूँजी नहीं मँगाई जायगी, इस कारण उत्पन्न होती है कि जब कि सूद की दर आजकी अपेक्षा बहुत अधिक होती थी उन समयों में भी अब तक कभी पूंजी बिल्कुल कम या बिल्कुल ही नहीं मँगाई जाती थी।"

उससे फिर पूछा गया :

प्रश्न—"क्या आप सोचते हैं कि यदि भारत में बसने जाने वाले गोरों पर से बन्धनों को बिल्कुल हटा लिया जाय तो भारत में अधिक पूँजी नहीं जायेगी ?"

उत्तर—"मैं यह नहीं सोचता कि इङ्गलैंड से पूँजी भेजी जायगी, मेरा विचार है कि जो पूँजी विलायत को भेजी जाती है सम्भवतः वही भारत में रह जायगी।"

२२ मार्च सन् १८३२ ई० को कप्तान टी० मैकन से पूछा गया था :

प्रश्न—"क्या इस तरह के कामों में योरपीयों द्वारा अपनी पूँजी लगाये जाने की संभावना है ?"

उत्तर—"मैं समझता हूँ कि भारत में विलायती पूँजी के बारे में बड़ी गलतफहमी है।"

प्रश्न—"मौजूदा कानूनों के रहते हुए, जो भारत के साथ आवा-गमन पर बंधन लगाते हैं, क्या आपकी राय में यह संभव है कि ऐसे कामों को हाथ में लेने वाली कम्पनियाँ स्थापित होंगी ?"

उत्तर—"मेरा ख्याल है कि गोरे, जिन्होंने भारत में धन अर्जित किया है, चित प्रोत्साहन मिलने पर ऐसे सार्वजनिक कार्यों को हाथ

में ले सकते हैं, लेकिन मैं इसकी कल्पना नहीं कर सकता कि ऐसे कामों में लगाने के लिए इङ्गलैंड से पूँजी ले जाने का खतरा उठाने का कोई साहस करेगा; वास्तव में मेरा विश्वास है कि पूँजी कभी भी इङ्गलैंड से भारत को नहीं मँगाई जाती, यह वहीं पैदा की जाती है और विलायत में भेजी जाती है"

इस प्रकार उन दिनों यह एक कहानी सी बात थी कि कोई गोरा सैलानी इङ्गलैंड से भारत को पूँजी मँगाता।

भारत में विलायती पूँजी की आवश्यकतायें और उनसे मिलने वाली सुविधायें भारत निवासियों के लिए कितनी थीं इसके संबन्ध में श्रीयुत रिकार्ड्स ने पार्ल्यामेन्ट की कमेटी के सामने इङ्गलैंड में कहा था :

"भारत को अपनी सम्पत्ति के विकाश के लिये पूंजी की आवश्यकता है; किन्तु इस काम के लिए सबसे अच्छी पूंजी देशवासियों द्वारा खड़ी की जाने वाली ही हो सकती है और यदि हम लोगों की संस्थायें मार्ग में रोड़े न अटकायें तो ऐसी पूंजी खड़ी की जा सकती है।"

हम अब न्यायोचित ढंग से पूछ सकते हैं कि पार्ल्यामेन्ट की कमेटी के सम्मुख इन व्यक्तियों की गवाही दिये जाने के समय के बाद से क्या भारत में विलायती पूंजी की आमद हुई है, यदि ऐसा हुआ है तो वह पूंजी किन तरीकों से रक्खी गई हैं, इसे स्मरण रखना चाहिये कि एक शताब्दी पहिले भारत का व्यवसाय बहुत समृद्ध था और उसका देशी और विदेशी व्यापार भी भारी था किन्तु उन दिनों के इंगलैंड निवासियों के 'शिष्ट स्वार्थ' से भारतीय व्यापार

और उद्योग-धंधों का विध्वंस हुआ। वह इस पुस्तक के पृष्ठों में कहा गया हैं; इस देश के निवासियों को अपनी पूंजी लगाने के लिए कोई व्यवसाय नहीं था इस लिये उन्हें मजबूर होकर इसे बैंकों में ही जमा करना पड़ता था जो उस समय सरकारी था।

भारत-निवासी अपनी पूंजी को अधिकतर सरकारी तमस्सुकों में बहुत कम सूद पर लगाते हैं। कोई यह जाँच-पड़ताल करने की कोशिश नहीं करता कि उन तमस्सुकों और सरकार द्वारा संचालित बंक जैसे पोस्टल सेविंग बंक और इम्पीरियल बक तथा इस देश के कुछ बड़े नगरों में उसकी शाखाओं में जमा की हुई रक़म किस काम आती है। ये बंक विलायती व्यापारियों को रुपया उधार देते हैं जो अपने व्यवसाय से बहुत अधिक लाभ उठाते हैं इससे भारत में विलायती पूंजी के आने का किस्सा जारी रहता है।

इसे भूलना नहीं चाहिए कि भारत के कुछ उद्योग-धंधे को, जिनमें से अधिकांश अंग्रेजों के आधीन होते हैं भारतीय सरकार द्वारा इस देश के निवासियों द्वारा प्राप्त कर की रकम से काफ़ी सहायता दी जाती है।

केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा के माननीय सदस्य सरकार से यह पूछें तो बहुत अच्छा हो कि भारतीय सरकार इस देश में अंग्रेजों द्वारा संचालित और अधिकृत भिन्न भिन्न उद्योग-धन्धों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कितनी रकम सहायता रूप में देती है। भारत को अपने देश की उन्नति के लिए किसी तरह की पूँजी की जरूरत

नहीं थी। यदि अंग्रेजों ने भारत में कोई पूँजी लगाई है तो इसलिए नहीं कि भारत को उसकी जरूरत थी, बल्कि इसलिए कि वे भारत निवासियों का हक मार कर स्वयं धनी होना चाहते थे और उनकी विवशता से लाभ उठाना चाहते थे।

हमारी समझ में भारत में विलायती पूँजी की बात मुख्यतया कपोलकल्पना है और उसके यहाँ होने से भी (यदि सचमुच वह यहाँ हो) अंग्रेजों को किसी प्रकार अन्यायोचित राजनीतिक विशेषाधिकार पाने का अधिकार नहीं।

भारत को स्वराज्य क्यों नहीं दिया जाता ?

भारत इङ्गलैण्ड के लिए दूध देने वाली गाय है। भारत चाहे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करे वा औपनिवेशिक स्वराज्य, इङ्गलैण्ड के लिए नतीजा एक सा ही होगा। इसका अर्थ यह होगा कि भारत बहुत कुछ हद तक भारतीयों के लिए हो। तब इङ्गलैण्ड के पिट्ठुओं का क्या होगा ? हम समस्त भारतीयो को निम्नांकित अवतरण पर विचार करने की प्रार्थना करते हैं जो स्वर्गीय राबर्ट नाइट द्वारा लन्दन के स्टेट्समैन पत्र में (जो अब बन्द हो गया है) प्रकाशित एक लेख से लिया गया है :—

"किन्तु हमारे साम्राज्य से प्राप्त होने वाले लाभ केवल व्यापारी वर्ग तक सीमित नहीं हैं। उन्हें इङ्गलैण्ड के अमीर से लेकर किसान तक सब वर्ग के व्यक्ति उठाते हैं। वाइसराय और उसके अधीन प्रेसीडेन्सियों के गवर्नरों के पद साम्राज्य के अमीर लोगों की महत्वाकांक्षाएँ हैं जो सम्पूर्ण अँगरेजी साम्राज्य के विस्तृत क्षेत्र से अधिक से अधिक पुरस्कार के रूप में प्राप्त हो सकते हैं। इसके बाद अन्य छोटे प्रान्तों के लेफ्टिनेंट गवर्नर के पद हैं, जो आबादी और विस्तार में फ्रान्स के बराबर हैं; तथा उनके ही समान अन्य प्रान्तो के आधे दर्जन कमिश्नर के पद हैं। इसके अतिरिक्त कौंसिल के सदस्य, राजदूत, कलक्टर, मजिस्ट्रेट और जज के पद हैं जिनकी आय महाराजाओं की तरह है और उनके अधीन हजारों मुल्की अमलों के दर्जे हैं।

"यदि हम भारत में सुलभ पेशों की ओर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि अँगरेज़ बैरिस्टर देश के सर्वोच्च न्यायाधीश (जजी) के पदों को छेंके हुए मिलेंगे जिनका अधिकार आधे योरप के विस्तार के प्रदेश पर दिखाई पड़ेगा। अँगरेज बैरिस्टर अँगरेज़ी न्याय के प्रबन्ध और नियमन, और विवेचन के सब पदों पर तथा वकालत करने में भी सब प्रेसिडेन्सियों में अग्रगण्य मिलेंगे।

"इसके बाद चिकित्सा क्षेत्र में हजार बारह सौ अँगरेज डाक्टर भी भारत में अपनी निपुणता द्वारा लाभ की आशा से पड़े हैं। इसके साथ ही हम ईसाई धर्म-प्रचारक संस्थाओं और कालेजों को भी नहीं भूल सकते जिसमें बहुत अधिक संख्या में शिक्षित अँगरेज खप जाते हैं और उनके परिवारों की शिक्षा की व्यवस्था करते हैं।

"फिर, हमने ऊपर जिन वर्गों का उल्लेख किया है उनके अतिरिक्त संयुक्त भारतीय सेना के अफसरों का दर्जा है।......यही बात उस देश के शिक्षा-विभाग के सम्बन्ध में है...... इञ्जिनियरी और रेलवे के विभागों में छोटे से छोटे कुशल श्रमिक से ले कर, उसकी व्यवस्था करने वाले वैज्ञानिक अध्यक्ष तक भरने के लिए भारतीय साम्राज्य का क्षेत्र कितना विस्तृत है!"

भारत के स्वराज्य की प्रत्येक व्यवस्था इङ्गलैण्ड के आर्थिक हितों के विरुद्ध पड़ती है। इंडिया फार सेल : काश्मीर सोल्ड (भारत बिक्री के लिए : काश्मीर बिक गया) नामक पुस्तिका के लेखक ने लिखा है :—

"हम इस बात का अनुभव करते नहीं जान पड़ते कि भारत के खो देने से हम लोगों का पूर्वी देशों का सम्पूर्ण व्यापार निश्चय ही हाथ से निकल जायगा, किन्तु इसे देखना आसान है कि ऐसा होगा; क्योंकि केवल भारत का ही व्यापार—इतनी मज़बूती से जितना मध्य एशिया का व्यापार हम लोगो के लिए बन्द हो गया है—हम लोगों के लिए बन्द नहीं हो जायगा, बल्कि इसके अतिरिक्त भारत अपने कच्चे माल और प्राचीन समय से ही वस्तुओं के तैयार करने की निपुणता के कारण, रक्षण नीति का अनुसरण कर शीघ्र ही एक महान व्यवसायिक देश हो जायगा—अपनी सस्ती मजदूरी और कच्चे माल की बहुतायत के कारण हम लोगों को सभी पूर्वी देशों से उजाड़ फेंकेगा।" (मैजर डबल्यू० सेजविक कृत 'इंडिया फार सेल: काश्मीर सोल्ड' कलकत्ता, डबल्यू० न्यूमैन ऐंड को० लि० १८८६ पृष्ठ ४)

विलायत में अपने एक भाषण में श्री लार्ड डफरिन ने कहा था :-

"सचमुच, यह कहना अत्युक्ति न होगी कि यदि कभी भारतीय साम्राज्य पर कोई विपत्ति पड़ी, या हिन्दुस्तान के प्रायद्वीप से हम लोगों का राजनीतिक संबन्ध आँशिक रूप से भी टूटा तो इंगलैंड का कोई भी घर ऐसा न होगा—प्रत्येक दशा में व्यवसायिक जिलों में—जो दारुण विपत्ति के भयानक परिणामो को अनुभव करने के लिए विवश न होगा: (हँसी)" ("लार्ड डफरिन्स स्पीचेज़ इन इंडिया" जान मुरे पृ० २८४)

यदि भारत को किसी भी प्रकार का स्वराज्य दिया जाय तो क्या उसके साथ इंगलैंड के राजनीतिक सम्बन्ध में बहुत अधिक क्षति न

पहुँचेगी ? भारत में स्वदेशी और वहिष्कार का आन्दोलन प्रारम्भ होने के समय से इंगलैंड के व्यवसायिक जिलों को दारुण विपत्ति के भयानक परिणामों का अनुभव करने के लिए विवश होना पड़ रहा है।

"भारत में किसी प्रकार का स्वराज्य स्थापित होने पर देशी उद्योग धन्धों को प्रोत्साहित करने के लिए या तो तरजीह देने वाली चुंगी लगाई जायगी अथवा वहिष्कार की नीति बर्ती जायगी और ऐसा होने से "बनियों की जाति" के लाभ की वृद्धि न होगी। एक अंग्रेज लेखक ने लिखा है:—

"(चीनी) साम्राज्य की सैनिक उन्नति की अपेक्षा, जिसका सामना करने के लिए प्रायः सभी तैयार होंगे, उसकी औद्योगिक उन्नति अधिक भय की वस्तु है, जिनको, कुछ हद तक, बढ़ाने के लिए दूसरे राष्ट्र इच्छुक होंगे।" (पियरसन कृत 'नेशनल लाइफ एंड कैरेक्टर' पृ० १४१)

इन परिस्थितियों में भारत को किसी भी प्रकार का वास्तविक स्वराज्य नहीं दिया गया तो इस में क्या आश्चर्य है ?

९—क्या करना चाहिए ?

भारतीय उद्योग-धन्धों के प्रोत्साहन के लिए स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार करना चाहिए। यह दोनों बातें एक ही वस्तु के दो आवश्यक पहलू हैं, इनमें से कोई एक दूसरे की सहायता के बिना नहीं पनप सकता। दुनिया के इतिहास में कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिल सकता जिसमें एक बिना दूसरा चल सकता हो। जब कभी किसी स्वतन्त्र देश ने अपने देशी उद्योग-धन्धें की उन्नति और रक्षा करने अर्थात् स्वदेशी के प्रयोग की कोशिश की है तो वह उसी समय विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार किए बिना इसे सफलता पूर्वक कर सकने में समर्थ नहीं हुआ है जब कि इंगलैंड जो इस समय संसार में सबसे अधिक बेरोक व्यापार करने वाला देश है, अपने उद्योगधंधें को खड़ा करने के लिए प्रयत्न कर रहा था तो उसने इसे आर्थिक बहिष्कार द्वारा पूरा किया। आर्थिक वहिष्कार का अर्थ यह है कि विदेशी वस्तुओं की जगह देश की ही वस्तुएँ प्रयोग की जायँ। आयर वासी इतिहास लेखक लेकी लिखता है:

"इङ्गलैण्ड ने जब वस्तुओं के तैयार करने की उन्नति की दशा में बहुत अधिक पग बढ़ा लिया था तो उस समय जीविका के साधनों पर जनता के अधिक लदते जाने का बुरी तरह अनुभव किया और व्यवसायियों ने धीरे-धीरे बेरोक व्यापर की नीति ग्रहण की। कोई भी पुनरुत्थान इससे अधिक विस्मयजनक या पूर्ण नहीं हो सकता था, इङ्गलैण्ड में

कभी कोई भी माल तैयार करने का व्यवसाय नहीं चलाया गया था, जिसकी प्रतिबन्धों द्वारा रक्षा व छूट रूप में राजकीय सहायता द्वारा मदद न की गई हो। उस व्यावसायिक प्रभाव की अत्यधिक संकीर्णता और स्वार्थपरता ने, जो क्रान्ति के समय बहुत जोरदार हो गई थी अमेरिका को शत्रु बना दिया था, आयरलैंड के पनपते हुए व्यवसाय को कुचल डाला था और भारत के कैलिको (सादे सूती वस्त्र) के बुनने के व्यवसाय को नष्ट कर दिया था तथा देश के (विलायत के) खरीदारों पर उनको प्राय: सभी आवश्यकता की वस्तुओं पर व्यापारिक एकाधिकार की दर लादी थी।

यह सब लोगों को भली भाँति ज्ञात है कि इंगलैंड ने आयरलैंड के माल का वहिष्कार किया था किन्तु यह उतनी अच्छी तरह से नहीं मालूम है कि उसने स्काटलैंड के साथ भी इसी प्रकार से दुर्व्यवहार करने का प्रयत्न किया था।

लेकी लिखता है:—

"स्काटलैंड की राष्ट्रीय दरिद्रता और दुखद अवस्था भी उसे अपने पड़ोसी संघर्ष से नहीं बचा सकी, एक ही साम्राज्य का भाग होने पर भी उसे अँग्रेजी उपनिवेशों के सभी व्यापार से वंचित रखा गया था। उपनिवेशों का कोई भी माल स्काटलैंड में नहीं उतारा जाता था। पहले उसे इंगलैंड के बन्दरगाह में उतारना पड़ता और वहाँ चुंगी चुकानी पड़ती; उसके बाद भी उसे स्काटलैंड के जहाज में स्काटलैन्ड नहीं भेजा जा सकता था। इसके साथ ही इंगलैन्ड के साथ व्यापार करने में भी बहुत अधिक बाधा डाली जाती थी।"

किन्तु स्काटलैन्ड निवासी भारत और आयरलैन्ड निवासियों की तरह बुजदिली से नही दब गये। उक्त इतिहास लेखक ही लिखता है:

"यद्यपि वे बृटिश साम्राज्य के ही भाग थे और वे अंग्रेजी युद्धों के खतरों के बोझ में समान रूप से हिस्सा बटाते थे तथापि स्काटलैंड-निवासी उपनिवेशों के सब व्यापार से अपने पड़ोसियों द्वारा ही वंचित कर दिये गये थे और अब उन्होंने केवल अपने हित और अपनी मर्यादा की रक्षा करने का निश्चय किया। एक कानून बनाकर घोषणा की गई कि उस समय राजा करने वाली रानी की मृत्यु के पश्चात स्काटलैन्ड के राजा को पार्ल्यामेन्ट की अनुमति के बिना युद्ध छेड़ने का कोई अधिकार नहीं रहना चाहिये। इससे भी अधिक विस्मयजनक दूसरी बात यह कानून थी कि रानी के निस्सन्तान मर जाने पर उसका उत्तराधिकारी प्रोटेस्टेन्ट मतानुयायी चुना जाना चाहिये किन्तु यह वही व्यक्ति नहीं होना जाहिए जो इंगलैंड की गद्दी का उत्तराधिकारी होने वाला हो, जब तक कि एक ऐसी संधि न बन गई हो जिसमें स्काटलैन्ड के राज्य-सिंहासन और राज्य की मर्यादा और राज्य-पद, पार्ल्यामेन्ट की स्वतंन्त्रता, शक्ति और समय २ पर बैठने के अधिकार तथा राष्ट्र के धर्म, स्वतन्त्रता और व्यापार की अँग्रेजों व किसी विदेशी शक्ति के प्रभाव से रक्षा करने की शर्त न हो ......

"ये दिलेरी के काम थे और उन्होंने साफ २ दिखला दिया कि राष्ट्र की आत्मा को आगे झुकाया नहीं जा सकता। स्काटलैंड बेरोक व्यापार की अनुमति देने के लिए इंगलैन्ड को सीधे विवश नहीं कर सकता था किन्तु वह अपने को एक स्वतन्त्र राज्य घोषित कर सकता

था और फ्रांस की सहायता से वह अपनी स्थिति की रक्षा कर सकता था..............एक दर्शक ने लिखा है, 'सारा राष्ट्र अजीब तरह से उत्तेजित हो गया था और इंगलैंड से स्वतंत्र होने की राष्ट्रीय भावना सभी वर्ग के लोगों में बड़े जोर से जाग उठी थी।''

खुशामद का सबसे अच्छा तरीका नकल करना है। जो लोग यह सोचते हैं कि प्रत्येक अंग्रेजी चीज अच्छी है उन्हें अंग्रेजों की राजनीति अर्थ-शास्त्र नीति का एक पृष्ट देखना चाहिए और देशी उद्योग-धन्धों के प्रोत्साहन के लिए वे जो करते हों उसे करना चाहिए।

इंगलैंड ने भारत का हक मार कर अपने सूती वस्त्र के व्यवसाय को खड़ा किया। अन्य सभी बातों से अधिक यही व्यवसाय था जिससे उस देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति की बहुत अधिक वृद्धि होती थी, श्रीयुत जान डिकिन्सन द्वारा लिखित और सन् १८५३ ई० में प्रकाशित 'दि गवर्नमेंट आफ इन्डिया अन्डर ए व्यूराक्रेसी' (नौकरशाही के आधीन भारत की सरकार) नामक पुस्तक में लिखा है—"हम लोगों के सूती वस्तुओं के व्यवसाय में इंगलैंड की आबादी के आठवें भाग के बराबर लोग लगे हुए हैं और इससे सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय का चौथा भाग अथवा १ करोड़ २० लाख पौंड वार्षिक प्राप्त होता है" (पृष्ठ ६७)

लोहे या किसी दूसरी वस्तु का कोई व्यवसाय नहीं था जिसने इंगलैंड को धनी और सम्पन्न बनाया जितना कि सूती वस्तुओं ने।

अँग्रेज भारत के स्वार्थों और हितों की नीचता-पूर्वक अवहेलना करते हैं उनमें भारत के सम्बन्ध में उत्तरदायित्व और कर्तव्य की भावना जाग्रत करने के लिए उनकी आर्थिक हानि करने की अपेक्षा

कोई दूसरा अधिक पक्का साधन सफलता प्राप्त करने का नहीं था, इसीसे वहिष्कार आन्दोलन की उत्पत्ति हुई और यह सफल हुआ। वह इस घटना से सिद्ध होता है कि एक समय लंकाशायर की ५०० से अधिक सूती वस्त्रों की मिले बंद हो गई थीं। 'हाँ, यह जरूर है कि अंग्रेजों ने अभी तक अपना ध्यान भारतीय मामलों की तरफ नहीं फेरा है वा भारत के साथ किये हुए अन्यायों को मिटाने वा उसकी शिकायतें दूर करने के लिए कोशिशें नहीं की हैं।

जहाँ कहीं भी राष्ट्रों के जन्म हुए हैं वहाँ उसको पूर्ण करने के लिए आवश्यक पहिला मार्ग निश्चय रूप से वहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन रहा है, हम अमेरिका की तरफ ध्यान दे सकते हैं वह। उपनिवेश बसाने वालों ने क्रान्ति खड़ी करने और उसके बाद एक राष्ट्र निर्माण करने के समय वहिष्कार का अनुसरण किया था। इसकी कहानी इतनी प्रसिद्ध हैं और इतनी अधिक कही गई है कि उसे यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं, लेकी का केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

"मुख्य नगरों के व्यापारियों ने यह शर्तनामा किया कि इंगलैंड से और माल मँगाने के आज्ञा-पत्र न भेजे जांय, पहिले के भेजे हुए भी सब आज्ञा-पत्र रद्द कर दिये जाँय तथा कुछ अवस्थाओं में इंगलैंड के ऋण चुकता करने की रकम भी न भेजी जाय, जब तक कि स्टाम ऐक्ट रद्द न कर दिया जाय.............................. उपनिवेशों को इंगलैंड की सहायता की आवश्यकता रहने देने के लिए उनके व्यवसाय की उन्नति के लिये बहुत अधिक यत्न किया गया, धनी से धनी नागरिकों ने इङ्गलैण्ड से मँगाये गये

नये कपड़े पहिनने की जगह पुराने और हाथ के बने कपड़े पहिनने का उदाहरण रक्खा तथा ऊन की कमी को पूरा करने के लिए भेड़ों का माँस उपयोग करने से दूर रहने की शर्त की गई।

(लेकी कृत इङ्गलैण्ड का इतिहास, जिल्द चार, पृष्ठ ८३)

इटली द्वारा भी यही कहानी दोहराई गई थी। इटली संयुक्त नहीं था; केवल आधी शताब्दी पहिले इटली राष्ट्र इस शब्द के आधुनिक अर्थ में विद्यमान नहीं था, किन्तु जब राष्ट्रीय भावना की जाग्रति हुई तो इटली निवासियों ने, जो विदेशी जुए के नीचे कराह रहे थे, अपने देशवासियों को आष्ट्रिया की सिगार और लाटरी का टिकट खरीदने से मना किया जिसका लाभ अष्ट्रिया के शाही खजाने में जाता था।

इटली और जर्मनी के ऐक्ट के सम्बन्ध में डा० हिनरिच् फ्रीडजङ्ग ने प्रारम्भिक टिप्पणी के रूप में ठीक ही कहा है। "हमें यह बात ध्यान पूर्वक देखनी चाहिये कि जर्मनो और इटली दोनों देशों में ऐक्य आन्दोलन के समर्थक केवल शिक्षित वर्ग से ही उत्पन्न हुए। विदेशी व्यापार की स्थापना और प्रसार तथा सड़कों और रेलों के निर्माण द्वारा ही उनके प्रयत्नों को बहुत अधिक सहायता मिली थी, क्योकि इस प्रकार राष्ट्र के पृथक-पृथक तत्व एक जगह लाये जा सके, अपने छोटे देश के बाहर बाजार के लिए माल तैयार करने वाले व्यवसायी तथा चुङ्गी-घर के प्रतिबन्धों से तङ्ग आए हुए व्यापारियों ने देश के विद्वानों और लेखकों को एकत्र किया।"*

---

* संसार का इतिहास (डा० यच० यफ० हेलमहोल्ट द्वारा सम्पादित) जिल्द ८ पृष्ठ १६०

भारतीय व्यवसायियों का देश छोटा नहीं है, इस कारण उसे अपने देश के बाहर के बाजारों के लिए माल तैयार करने की अभी आवश्यकता नहीं है।

स्वदेशी की जो भावना जर्मनी और इटली में उत्पन्न हो सकी, भारत में उन कारणों से उत्पन्न हो गई है जो समय की गति पहिचानने वाले व्यक्तियों के लिए स्वभाविक है। वहिष्कार का आन्दोलन जो स्वदेशी आन्दोलन का आवश्यक रूप से एक भाग ही है निश्चय रूप से भारतीय राष्ट्रीयता के उसी लक्ष्य को पूरा करेगा जो इसके द्वारा अमेरिका और इटली में हुआ है। स्वदेशी आन्दोलन से होने वाले परिणामों कों माप सकना कठिन है। नेशनल लाइफ ऐन्ड नेशनल कैरेक्टर (राष्ट्रीय जीवन और राष्ट्रीय चरित्र) का लेखक पियर्सन भी अपनी पुस्तक के पृष्ट ९९ पर लिखता है :

"सैनिक विजय की अपेक्षा औद्योगिक उन्नति के द्वारा भविष्य में निम्न जातियों को प्रभुत्व मिल सकना सम्भव है।"

प्रत्येक देशभक्त भारतीय को हृदय से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि भारत में स्वदेशी आन्दोलन को सफलता मिले, मातृभूमि का फिर से अभ्युदय हो और उसके व्यवसायी सपूतों और पुत्रियों के कौशल द्वारा दूसरे राष्ट्रों के सम्मुख मान और प्रतिष्ठा प्राप्त हो। ऋषियों और मुनियों की इस भूमि में, जिनकी भौतिक और अध्यात्मिक देन का संसार के लोगों में अब भी मान है, स्वदेशी और बहिष्कार का आन्दोलन इतना प्रबल हो जाय कि वह किसी प्रकार निर्मूल न हो

सके, सब संसार के नियन्ता भारत के लोगों में शक्ति दें कि वे स्वदेशी और बहिष्कार का आन्दोलन प्रबल रूप से चलावें जब तक कि उनके सब उद्योगों को सफलता न प्राप्त हो जाय और एक संयुक्त भारत राष्ट्र का निर्माण न हो जाय।

———

परिशिष्ट क

भारतीय जहाज़ी विद्या की बरबादी

भारतीय जहाजी विद्या की बरबादी किस प्रकार की गई, इस पर कुछ प्रकाश श्रीयुत डबल्यू० यस० लिण्डसे कृत हिस्ट्री आफ मर्चेन्ट शिपिङ्ग (व्यापारिक जहाजी विद्या का इतिहास) भाग २ के कुछ उद्धरणों द्वारा डाला गया है जिसमें यह लिखा है :

"सन् १७८६ ई० में पुर्तगाल-निवासियों के पास, जिनके हाथ में एक समय पूर्वी देशों का संपूर्ण व्यवसाय था, कैन्टन में केवल तीन जहाज थे। हालैंडवालों के पास ५, फ्रान्सवालों के पास १, डेनमार्कवालों के पास १, अमेरिका के संयुक्त राज्य के पास १५ तथा अंग्रेजों की ईस्ट इन्डिया कम्पनी के पास ४० जहाज़ थे, उस समय भारत में बसनेवाले अंग्रेजी प्रजा-जनों के पास उतनी ही संख्या में जहाज़ थे, इसके अतिरिक्त उन दिनों पूर्वी देश के व्यापार का अत्यधिक भाग भारतवासियों के सत्वाधीन भारतीय जहाजों द्वारा ही होता था, जिनके द्वारा भारत से चीन तक और मलाबार के समुद्र तट से फारस की खाड़ी तथा लाल सागर तक इतनी अधिक यात्रायें की जाति थीं जितनी कि योरप निवासियों द्वारा उत्तमाशा अन्तरीप (केप आफ गुड होप) होकर

अफ्रिका का चक्कर लगाकर विलायत से भारत का समुद्री मार्ग ज्ञात होने से पहले के समयों में होती थीं।"

"भारतवर्ष में बने हुए जहाजों को सन् १७६५ ई० के बाद भारत से माल ले जाने की आज्ञा प्रदान की गई थी, उस साल कम्पनी के बहुत अधिक जहाज अंग्रेजी सरकार के काम में लगा दिये गये थे, इसलिए इस कारण से भारतीय जहाजों को विलायत माल भेजने में इस्तेमाल करने की आज्ञा दी गई थी, उन जहाजों को इस बात की भी स्वतन्त्रता थी कि लौटते समय अपनी इच्छा से जो माल भी चाहें अपनी ओर से लाद कर कम्पनी के राज्याधीन स्थानों व किसी भी ऐसे स्थान को जा सकें जहाँ तक यात्रा करने का उन्हें अधिकार हो।"

"उनमें से बहुत से जहाज़ इस धारणा को लेकर बने थे कि उनका स्थायी रूप से उपयोग किया जायगा, हालाँकि लार्ड कार्नवालिस ने इसके विरुद्ध उनको आगाह भी कर दिया था, इस कारण उनके मालिकों को यह देखकर अत्यधिक निराशा हुई कि सरकार और कम्पनी की तात्कालिक आवश्यकतायें पूरी हो जाने के बाद उन जहाजों की आवश्यकता अब आगे नहीं रह गई थी, कम्पनी के मातहत अंग्रेजी जहाज के मालिकों ने अपने एकाधिकार की दृढ़ रूप से रक्षा की और आगे के सालों में कई यात्राओं के लिए शर्तनामा ठहराकर अपने चार्टर (अधिकार पत्र) द्वारा प्राप्त

अधिकारों पर स्थायी रूप से किसी प्रकार के परिवतन का कुछ समय तक सफलतापूर्वक विरोध करते रहे। जो संघर्ष इंगलैंड के स्वतन्त्र व्यापारियों के बीच खड़ा हुआ था, जो इस मामले में कम्पनी के विरुद्ध देशी जहाज़ के मालिकों के साथ मिल गये थे, उसका यह नतीजा हुआ कि डायरेक्टरों ने अनेक रियायतें कीं जो भविष्य में व्यापार के बेरोक होने की भूमिका थी।" (पृष्ठ ४५४, ४५५)

जहाँ तक भारतीय जहाज के मालिकों का सम्बन्ध था भविष्य में वे रियायतें कदाचित बहुत ही अधिक देर में की गईं।

उपर्युक्त लेखक उसी पुस्तक की उसी जिल्द में लिखता है :

"जब १७९६ ई० में कम्पनी का अधिकार पत्र फिर से चालू किया गया तो उसमें यह महत्वपूर्ण बात जोड़ी गई थी कि इंगलैंड के सम्राट की, योरप के अन्तर्गत उसके राज्य के किसी भी भाग में रहनेवाली प्रजा को अपने जन्म स्थान के देश की कोई उपज या तैयार माल को, सिवा फौजी सामान गोला, बारूद, मस्तूल, पाल की रस्सी, राल, धूना तथा तांबा के, भारत भेजने का अधिकार है, तथा भारत के कम्पनी के मुल्की नौकर और वहाँ रहनेवाले स्वतन्त्र व्यापारियों को भी अपनी ओर से और अपनी जिम्मेदारी पर कैलिको (सादे सूती कपड़े), डोरिया, मलमल और अन्य कपड़े के थानों को छोड़ कर सब तरह का भारतीय माल जहाज द्वारा भेजने की आज्ञा थी; किन्तु अपनी व्यापारिक कार्य-

चाहियों की प्रतिद्वन्दिता के लिए डायरेक्टरों में इतनी अधिक द्वेष भावना थी कि उन्होंने नये चार्टर (अधिकार पत्र) में सरकार द्वारा अनेक दफ़ाएँ जुड़वा लीं, जिससे भारत वा साधारणतया इंगलैंड के व्यापारियों और कम्पनी के नौकरों को कम्पनी के जहाज़ों को छोड़ कर दूसरे जहाज़ों में माल मँगाने वा भेजने की आज्ञा नहीं थी। अनेक प्रतिबन्धों का सामना करते हुए भी व्यक्तिगत व्यापारियों द्वारा अनेक जहाज़ों में तीन हज़ार टन माल रखने की जगह प्रयुक्त होती थी।" (पृष्ठ ४५६-४५७)

उक्त पुस्तक में ही और आगे लिखा है:

"मारक्विस आफ हेस्टिंग्स द्वारा कम्पनी को इक्कीस मार्च १८१२ ई० को लिखे गये एक पत्र से लार्ड मेलविल ने निम्नांकित वाक्यांश उद्धृत किया है—"इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस कानून (१७९६ ई० का कानून) द्वारा प्राप्त सुविधाएँ कम से कम इस देश वा भारत के व्यापारियों के लिये सन्तोषजनक नहीं हैं।" (पृष्ठ ४५७)



परिशिष्ट ख

देशी लोहे के व्यवसाय की बरबादी

सर जार्ज वाट लिखित कमर्शल प्राडक्टस् आफ इंडिया (भारत की व्यावसायिक उपज) में पृष्ठ ६५२ पर लिखा है:—

"इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि पिटुआ लोहा को सीधे तैय्यार करने की आजकल की विद्या अत्यधिक प्राचीन ऐतिहासिक आलेखों की तिथि के पहले भी देश में बहुत अधिक प्रचलित थी तथा अत्यधिक उत्तम प्रकार के इस्पात तैय्यार करने के लिये भारतीय उट्ज़ (भारतीय इस्पात का नाम) तैय्यार करने की विधि प्रचलित होने के कई शताब्दी पहले ही ज्ञात हो चुकी थी।" "लोहा गलाने का देशी व्यवसाय रेल की पहुँच के स्थानों में मँगाये जाने-वाले सस्ते लोहे और इस्पात के कारण बिल्कुल उखड़ चुका है। किन्तु यह प्रायद्वीप के भीतरी भागों में अब भी प्रचलित है तथा मध्यप्रान्त के कुछ हिस्सों में इसमें उन्नति भी दिखाई पड़ी है। (इम्पीरियल गज़ेटियर १६०७) श्रीयुत सैय्यद अली बेलग्रामी के अनुसार निज़ाम राज्य से वे चीज़ें प्राप्त होती थीं, जिनसे मध्य युग में दमश्क के चाकू, कैंची आदि के प्रसिद्ध फल तैयार होते थे। आज भी हैदराबाद तलवार और छूरों के लिये प्रसिद्ध है।"

यह बात मालूम नहीं पड़ती कि भारत में अंग्रेजी सरकार ने लोहा गलाने के देशी व्यवसाय को बिल्कुल उखड़ जाने से बचाने के लिये कोई उपाय किया; किन्तु इस विद्या को नष्ट करने के लिये किस प्रकार कोशिशें की गईं इसकी कुछ झलक श्रीयुत वैलेन्टाइन बाल लिखित 'जंगल लाइफ इन इंडिया' (भारत में जंगल का जीवन) नामक पुस्तक में पृष्ठ २२४-२२५ पर पाया जा सकता है। इसमें उन्होंने लिखा है:—

सोलह नवम्बर (१८६६) देवचा—

"इस गाँव में लोहे की कुछ देशी भट्टियाँ हैं जो देश के इस भाग में इस समय बिल्कुल लुप्त व्यवसाय के एक मात्र विद्यमान अवशेष हैं। इस व्यवसाय के लोप होने का कारण यह था कि बीरभूमि कम्पनी ने इसके ऊपर प्रतिबन्ध लगाये थे, जिसने लोहा तैय्यार करने का पूर्ण अधिकार खरीद लिया था। दूसरा कारण बाद में देशी जमींदार द्वारा नज़राना रूप में माँगी जानेवाली रकम थी।"

उपर्युक्त बीरभूमि कम्पनी एक अंग्रेजी कम्पनी थी। अंग्रेजी सरकार को लोहा और इस्पात तैय्यार करने का पूर्ण अधिकार इस कम्पनी के हाथ नहीं बेचना चाहिये था और न देशी जमींदार को अत्यधिक नज़राना लेने देना चाहिये था। उनको ऐसा करने के लिये किस व्यक्ति ने उभाड़ा यह नहीं लिखा गया है।

वैलेन्टाइन बाल आगे लिखते हैं :—

"मेरे अत्यधिक विश्वास के अनुसार यह भट्टियाँ अपने आकार और उनसे होनेवाले काम के विस्तार की दृष्टि से सारे देश में सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक भट्टी से प्रत्येक सप्ताह पन्द्रह हंडरवेट लोहा तैयार हो सकता है और ऐसी सत्तर भट्टियों से सन् १८५२ ई० में तैयार हुये सब लोहे की मात्रा डाक्टर ओल्डहम के अनुसार १७०० टन थी। यहाँ पर लोहा बनानेवाले या लोहार हिन्दू थे; किन्तु कुछ दूर उत्तर की ओर रामगढ़ पहाड़ी के आस पास लोहा बनाने वाली एक दूसरी जाति रहती है जो साधारण भट्टियाँ इस्तेमाल करती है, वह कोल जाति नाम से पुकारी जाती है।"

परिशिष्ट ग

देशी कागज के व्यवसाय की बर्बादी

पूर्वोक्त पुस्तक में ही सर जार्ज वाट ने एशिया के भिन्न भिन्न देशों तथा भारत में भी कागज बनाने के व्यवसाय का संक्षिप्त इतिहास दिया है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के दिनों की चर्चा करते समय उन्होंने लिखा है:—

> "भारत में काग़ज़ बनाने के देशी ढंग का सबसे पहला ब्यौरेवार वर्णन कदाचित बुचनन हैमिल्टन द्वारा किया हुआ है उसमें इस्तेमाल होनेवाला पदार्थ सन था। सन् १८४० ई० के पहले भारत में उपयुक्त होनेवाले काग़ज़ का अधिकांश चीन देश से आता था। इस सन् के लगभग इस ओर लोगों का विशेष ध्यान गया और हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों द्वारा देश भर में हाथ से काग़ज़ बनाने के कितने ही कारखाने खोले गए। जिन दिनों सर चार्ल्स वुड भारत मंत्री थे, भारत सरकार द्वारा खरीदे जाने वाले सभी काग़ज़ को विलायत से मँगाने की एक आज्ञा निकाली गई और इसके द्वारा भारत के एक पनपते हुए व्यवसाय को बहुत ही अधिक धक्का लगा।" (पृष्ठ ८६६)

परिशिष्ट घ

देशी चीनी के व्यवसाय की बर्बादी

कमर्शल प्राडक्टस आफ इंडिया ('भारत की व्यावसायिक उपज') में सर जार्ज वाट लिखते हैं

> "भारतीय चीनी पर इंगलैंड द्वारा आयात-कर लगाया गया जो वास्तव में निषेधक था।" यह कर उपनिवेशों की चीनी पर लगे हुए कर की अपेक्षा ८ शि० प्रति हंडरवेट (लगभग सवा मन) अधिक था।" (पृ० ९५८)

सर जार्ज वाट ने "विदेशों को निर्यात" के अध्याय को समाप्त करते हुए निम्नांकित पैराग्राफ लिखा है जिसमें पार्श्व शीर्षक "अत्यधिक धक्का" दिया है :—

> "इस प्रकार इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि भारतीय चीनी के व्यवसाय को अत्यधिक धक्का पहुँचाया गया था जो उस व्यवसाय की साधन-सम्पन्नता और उस में क्षतिपूर्ति करने की शक्ति न होने पर उसके लिए विनाशकारी होता। यदि इंगलैंड भारत के गुड़ को खरीदता रहता तो उसके स्वाभाविक परिणाम स्वरूप ईख की खेती और उसकी उपज में निस्सन्देह वृद्धि होती। अब यह सब कुछ बदल गया है और आज चीनी विदेश से जाने वाले सम्पूर्ण खाद्य पदार्थों का ५३·३ प्रतिशत भाग बन गया है और

विदेश से सबसे अधिक आने वाली वस्तुओं में इसका स्थान दूसरा है, पहला स्थान कपड़े के थानों का है। इस प्रकार भारत के पूर्व काल के निर्यात किए जाने वाले दोनों मुख्य पदार्थ (कपड़ा और चीनी) अब आज-कल के सबसे अधिक आयात होने वाले पदार्थ बन गए हैं।"

सर जार्ज वाट की पुस्तक, जिससे उपर्युक्त उद्धरण लिया गया है, सन १९०८ ई० में "सम्राट के भारतमंत्री की आज्ञा से" प्रकाशित हुई थी और किसी दुष्ट आन्दोलनकारी द्वारा लिखी हुई विद्रोहात्मक पुस्तक नहीं है।

परिशिष्ट च

एक शताब्दी पहले भारत में अंग्रेज़ी माल का बिक्री-क्षेत्र

जब कि सन् १८१३ ई० के चार्टर कानून में यह बात कही गई थी कि इङ्गलैंड का कर्तव्य "भारत के अँग्रेजी राज्य के निवासियों के सुख और लाभ की वृद्धि करना है" क्या अँग्रेज़ अधिकारियों द्वारा प्रयुक्त उपाय भारतवासियों को सुखी बनाने वाले थे ? इस प्रश्न का उत्तर उन उपायों की ठीक तरह छान बीन करने से मिल सकता है।

सन् १८१३ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर को आगे के लिए चालू करने के समय भारत में विलायती माल की खपत के लिये बिक्री-क्षेत्र बनाने में विलायत के अँग्रेज़ तुले हुए थे। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर, इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए उन उपायों को उन्होंने प्रस्तावित किया। उस समय भारत में विलायती माल के लिए बड़ा बिक्री-क्षेत्र नहीं था। उन गवाहों ने जिनकी बात का कुछ मूल्य था, अपनी गवाही में पार्ल्यामेंट की कमेटी के सम्मुख कहा था कि भारत को अँग्रेजी माल की दरकार नहीं है।

वारेनहेस्टिंग्स ने पार्ल्यामेंट की कमेटी के सम्मुख कहा था :

"व्यापार के अन्य पदार्थों की तरह इङ्गलैंड में तैयार होने वाला माल भी इस तरह का होना चाहिए जो या तो

लोगों की आवश्यकतायें पूरा करे या भोग-विलास वा सुख-सामग्री की पूर्ति करे : ... भारत के गरीब लोगों को, जो आम जनता है, कोई भी आवश्यकतायें नहीं हैं, जब तक कि उनके अपने बदन पर लपेटे कपड़े के छोटे टुकड़े, उनकी झोपड़ी और उनके भोजन को ही उनकी आवश्यकता न मान ली जाय, और इन्हें वे अपनी भूमि से पैदा कर लेते हैं जिसे वे नित्य रौंदते हैं। गरीबों को छोड़ कर दूसरा दर्जा ज़मींदारों और कर वसूल करने वाले अहलकारों का है ; ये व्यक्ति रहन-सहन में उतने ही सादे होते हैं जितने कि गरीब; हम लोगों के जहाज़ पर जाने वाले किसी भी माल की उन्हें ज़रूरत नहीं। उस दर्जे के भारतवासी, जो पहले विलायती माल—जैसे दिखावट की चीज़ें, घरेलू सजावट या इस्तेमाल के असबाब, वा पहनने की चीज़ें खरीद सकते थे, अब अपना अस्तित्व नहीं रखते, मेरा मतलब मुसलमानों से है;"

विलियम कूपर से, जिसने भारत में कम्पनी की ३२ वर्ष तक सेवा की थी, कमेटी के सामने नीचे लिखा सवाल-जवाब हुआ था :

"भारत-निवासियों द्वारा विलायती चीजों के अधिक प्रयोग किए जाने की असंभावना के सम्बन्ध में आपकी राय क्या लोगों के चरित्र की किसी विशेषता पर बँधी है? निस्सन्देह उनके स्वभाव और रूढ़ियों के कारण इन चीज़ों की कोई

मात्रा प्रयोग करने में रुकावट पैदा होती है; अपने स्वभाव और रूढ़ियों और धर्म के कारण भी इन चीज़ों में से अधिकांश को वे त्याज्य समझते हैं; उदाहरणार्थ सम्पूर्ण मुसलमान जाति बाल से बनी हुई कोई चीज़ इस भय से नहीं छूएगी कि कहीं वह सुअर के बाल की न बनी हो और इसी कारण उस तरह की प्रत्येक वस्तु का वह परित्याग करेगी जब तक कि उसे पूरा विश्वास न हो जाय कि इस तरह की आशंका करने का कोई स्थान नहीं हैं और ऐसा ही हाल अन्य तरह की चीज़ों का भी है किन्तु मेरे ख्याल में विलायती माल के भारतीयों द्वारा खरीदे जाने में सब से बड़ी बाधा उनकी ग़रीबी है जिस के कारण वे सुख-सामग्रियों में लिप्त हो सकने में सर्वथा असमर्थ होते हैं; भारत की आम जनता अत्यधिक ग़रीब है और मज़दूरी बहुत सस्ती है।

"क्या आपका ख्याल है कि भारतवासियों द्वारा विलायती चीज़ों की मांग केवल सुख-सामग्रियों की ही है ? हाँ।

"जब आप भारत में थे तो क्या विलायती चीज़ें बाज़ार में पूरी तरह मिल सकती थीं ? मैं भारत में जितने समय तक रहा, उसके अधिकांश में आम तौर पर विलायती चीज़ों से बाज़ार पटा हुआ था। बहुत से व्यापारी, जिन्होंने कलकत्ते में विलायती माल मँगाया, उसे बेच सकना नामुमकिन होने के कारण बर्बाद हो गए।

सर जान मालकम से निम्नांकित सवाल-जवाब किया गया था :

"यदि ऊन की तैयार हुई चीज़ें इस तरह की बुनी जायँ कि विशेष रूप से भारतीयों के उपयोग की हों और भारत के उत्तरी भाग में भेजी जायँ तो क्या आपकी राय में उनकी खपत होगी ? मेरे ख्याल से यह बिल्कुल उन चीज़ों की क़ीमत पर निर्भर करता है। वे भी ऊनी चीज़ें तैयार करते हैं जो हम लोगों की हल्की ऊनी चीज़ों की तरह काम देती है ये चीज़ें ग़रीबों के लिए कम्मल और ऊँचे दर्जे के लोगों के लिए दुशाले हैं। विलायती ऊनी चीज़ों की बिक्री मुख्यतया उनको खरीद सकने की भारतीयों की क्षमता द्वारा ही नियंत्रित हो सकती है जैसा कि वास्तव रूप में किसी भी तैयार माल की मांग उसके मूल्य पर निर्भर करती है।

"क्या आप आपका विश्वास है कि अनेक तरह के विलायती माल ख़रीदने की भारतीयों की विशेष अधिकतर इच्छा होती है ? अधिकतर कभी भी नहीं...और मेरा यही विश्वास है कि उनके सादे पहनावे, स्वभाव और अपने पूर्वजों के तरीकों से चिपके रहने की प्रवृत्ति के कारण आम जनता उन चीज़ों को खरीदने की शक्ति होने पर भी खरीदने की कभी अधिक इच्छा नहीं कर सकती है... ...

"क्या आपका ख्याल है कि भारत आमतौर पर एक बहुत ही व्यवसायी देश है ? मैं समझता हूँ कि भारत-

निवासी बहुत ही परिश्रमी होते हैं और जिस किसी व्यापार वा विद्या को वे देख पावें उसको सीख सकने में बड़े प्रवीण होते हैं।" लार्ड टेनमाउथ ने भी गवाही के समय कहा था:—

"कि इस देश (इङ्गलैंड) में तैयार होने वाले किसी ऐसे माल को मैं नहीं जानता जिसको भारत के निवासियों द्वारा पर्याप्त मात्रा में खरीदे जाने की संभावना हो; मैं अपनी यह सम्मति भारत के लोगों की रहन-सहन के अपने अनुभव से दे रहा हूँ।"

सर टामस मुनरो—"यद्यपि वह सन् १८१३ ई० में मद्रास के गवर्नर नहीं थे—भारत में २८ वर्ष तक काम कर चुके थे। उन्होंने कमेटी के सम्मुख कहा था :—

"मैं अपनी (विलायती) चीज़ों की खपत भारतीयों में अधिक होने का लक्षण नहीं देखता; मैं समझता हूँ कि मैं जब भारत गया और वहाँ से लौटा उस अढ़ाई वर्ष की अवधि में कोई अन्तर नहीं पड़ा। मैं समझता हूँ कि उसका कारण ठीक रूप में वह नहीं है जिसे हम महँगी दरें कहते हैं, बल्कि यह उन कारणों से होता है जो कीमत की दरों की अपेक्षा अधिक स्थायी हैं। इसका कारण जलवायु का प्रभाव, भारतीयों की रहन-सहन और उनके अपने व्यवसाय की अत्यधिक कुशलता है; ...... इस देश (विलायत) में व्यय के दो बड़े साधन हैं जो भारत में नहीं पाए जा सकते। ये हैं भोजन की मेज़ के व्यय और घर की सजावट के

असबाब। हिन्दू भोजन की मेज़ नहीं रखता, वह अकेले जमीन पर ही और आमतौर पर खुले में, बैठ कर खाता है......तथा घरेलू असबाब की जहाँ तक बात है, यह कहा जा सकता है कि उसके घर ही नहीं होता क्योंकि उसके घर में ये सब सजावट के सामान कुछ भी नहीं होते......। फिर, जिन पदार्थों को उसे अपने भोजन के लिए आवश्यकता पड़ती है, उसकी पूर्ति स्वयं उसी का देश कर देता है, उसका देश उसे उसके पहनने के लिए सभी वस्त्र हम लोगों द्वारा दी जा सकने वाली सभी वस्तुओं की अपेक्षा बहुत अधिक सुन्दर और विभिन्न प्रकार का प्रदान करता है।"

श्री० टामस सिडेनहम ने, जिन्होंने मद्रास प्रेसीडेन्सी में बारह साल तक कम्पनी की नौकरी की थी, यह पूछने पर कि—भारतवासियों को विलायत के बने कुछ ऊनी माल खरीदने के लिये तैयार कर सकने की सम्भावना है, यह उत्तर दिया थाः—

"मैं सोचता हूँ कि नहीं; इस देश (विलायत) के बने ऊनी वस्त्र कुछ हिन्दुओं और ऊँचे दर्जे के बहुत से मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त होते हैं; अन्य लोगों द्वारा मेरे ख्याल में, उनके देश का कम्बल ही सभी ऊनी चीजों से अधिक आरामदेह माना जाता है जो दाम में बहुत सस्ता भी हो।"

श्रीयुत स्टीफेन रम्बोल्ट लुशिंग्टन से, जो पार्ल्यामेंट के सदस्य थे और मद्रास की कोठी में ग्यारह वर्ष तक रह चुके थे, निम्नांकित प्रश्नोत्तर हुआ थाः—

"आपने जितने भी देश देखे हैं उनकी अपेक्षा भारतवासी क्या अधिक गम्भीर, परिश्रमी और चीजें बनाने की विद्या में अधिक कुशल और लगे हुये नहीं हैं ? कोई भो मनुष्य हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक धैर्यशाली, अधिक परिश्रमी वा अधिक गम्भीर नहीं हो सकता, वे अपने सामने की वस्तु से कला का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। वे मलमल, छींट, दुशाले और सोने चांदी का काम करने में बहुत ही अधिक कुशल होते हैं।

प्रश्न—"क्या शीशे की कुछ छोटी मोटी चीजों को छोड़कर हम लोगों को तैयार की हुई दूसरी चीजां की खपत हिन्दुओं में बड़े नगरों में नहीं है ?

उत्तर—"नहीं।"

प्रश्न—"क्या वे ऐसे ऊनी वस्त्र जिनकी उन्हें आश्वयकता हो तैयार नहीं कर सकते जो हम लोगों के भेजे हुए माल की अपेक्षा उनकी रुचि और रहन सहन के अधिक अनुकूल और अत्यधिक सस्ता हो ?

उत्तर—"बेशक, क्योंकि उनकी मजदूरी बहुत सस्ती है और कच्चा माल बहुत सस्ता है।"

श्री विलियम फेयरली ने, जो बङ्गाल में व्यापारी और गुमाश्ते की भाँति तीस वर्ष तक रह चुके थे, पूर्वोक्त गवाहों का समर्थन कर कहा था कि विलायत में बनीं चीजों की भारतीयों को जरूरत नहीं। उन्होंने नीचे लिखो गवाही दी थी:—

"मेरी समझ में (भारत में) बाजार में मांग के अनुसार विलायती चीजें पूरी तरह मौजूद हैं, क्योंकि मेरे भारत छोड़ने के कुछ पहले आमतौर से विलायती चीजें नुकसान के साथ बिक रही थीं, ...और मेरा ख्याल है कि अब भी नुकसान के साथ बिक रहीं हैं।...

प्रश्न—"आप कमिटी को उन विलायती चीजों का नाम बताएँगे जिनकी खपत भारतीयों में होती है ?

उत्तर—"मुख्य वस्तुएँ लोहा, सीसा, तांबा, ऊनी वस्तुएँ और कुछ दूसरी चीजें; चश्मे और किवाड़ों के कब्जे, और इसी तरह कुछ छोटी मोटी अन्य चीजें; किन्तु वे लगभग सभी चीजों को तैयार कर सकते हैं जिनकी उन्हें जरूरत हो।"

श्रीयुत लेस्टाक विलसन ने, जो कम्पनी के एक जहाज के कप्तान थे, कहा था:

"मेरी अंतिम तीन यात्राएँ बम्बई और चीन की हुई थीं; और मेरा ख्याल है कि योरप से आए माल के व्यापार का जहाँ तक सम्बन्ध है, मुझे इन तीन यात्राओं में से दो में कुछ लाभ नहीं हुआ था या लाभ नहीं के बराबर था, दूसरी में बहुत मामूली लाभ हुआ था।"

श्रीयुत विलियम ब्रूस स्मिथ से, जो एक व्यापारी की भाँति चालीस वर्ष रहे थे, निम्नप्रकार सवाल-जवाब हुआ था। :—

"क्या आप को यह देखने का अवसर मिला था कि आप, देश के जिस भाग में थे, वहाँ पर भारतीयों में विलायती चीजों के

प्रयोग करने की रुचि उत्पन्न दिखाई पड़ती है? विलायत की बनी चीज़ें बहुत कम भारतीयों द्वारा इस्तेमाल की जाती हैं, उन चीज़ों के सम्बन्ध में उनकी अभिरुचि बिलकुल नहीं, वे उन्हें पसन्द नहीं।...मेरे पास कुछ विलायती चीज़ें कलकत्ते से बिक्री के लिए भेजी गई थीं, मेरा ख्याल है कि यह १७६३ ई० की बात हैं। और किसी भी भारतीय ने उन चीज़ों को नहीं पूछा और वे सब लौटा दी गईं; माल एक नाव भर था।"

"क्या वे चीज़ें लोगों के निगाह के सामने रक्खी गई थीं और उनके बिकवाने कों कोशिश की गई थीं? वे देशी दूकानदारों को इसलिए दी गई थीं कि जहां तक सम्भव हो बेची जायँ और न बिकने पर लौटा दी जायँ और वे दूकानदारों द्वारा सब वा उनमें से अधिकांश लौटा दी गईं।"

सर चार्ल्स वारे मैलेट से, जो लार्ड थे, और ईस्ट इण्डिया कम्पनी में २८ वर्ष तक नौकर थे, और कुछ समय बंबई के गवर्नर थे, गवाही में नीचे लिखा सवाल-जवाब किया गया था :—

"भारत-निवासियों के संबन्ध में अपने अनुभव से क्या आप समझते हैं कि उनके देश में विलायत की बनी चीज़ों की कोई जरूरत या लेने की इच्छा है? कदाचित संसार भर के लगभग सभी देशों से कम।"